अक्टूबर 2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89 | अंक – 10 | प्रति – ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

5 ▶ गुणवत्तापरक शिक्षा एवं शिक्षकों के दायित्व
15 ▶ सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम मंत्र है गायत्री मंत्र
34 ▶ अनुशासन की महिमा एवं इसका स्वरूप
41 ▶ जीवन में संतुलन है आवश्यक

विवेक का अनुशीलन

केवल विवेक ही हमें यह बता सकता है कि आज की स्थिति में क्या ग्राह्य है क्या अग्राह्य? यह हो सकता है कि अपरिष्कृत विवेक कुछ भूल कर जाए और उसका निर्णय पूर्णतया निर्दोष न हो,फिर भी यदि निष्पक्ष विवेक को जाग्रत रखा जाएगा तो बहुत शीघ्र ही वह भूल प्रतीत हो जाएगी और सच्चा मार्ग मिल जाएगा। यह डर, कि हमारा विवेक गलत होगा तो गलत निर्णय पर पहुँच जाएँगे, उचित नहीं। क्योंकि विवेक के अतिरिक्त और कोई मार्ग सत्यासत्य के निर्णय का है ही नहीं। यदि किसी शास्त्र, संप्रदाय, महापुरुष के मत का अनुकरण किया जाए तो भी अनेक शास्त्रों, संप्रदायों, महापुरुषों में से एक को अपना पथ प्रदर्शक चुनने का काम विवेक पर ही आ पड़ेगा। विवेक का अनुगमन कभी भी हानिकारक नहीं होता,क्योंकि बुद्धि का पवित्र,निःस्वार्थ, सात्विक भाग होने के कारण विवेक द्वारा वही निर्णय किया जाता रहेगा जो आज की हमारी मनोभूमि की अपेक्षा श्रेष्ठ हो।उसका अनुगमन करने से मनोभूमि दिन-दिन अधिक पवित्र एवं विकसित होती जाएगी,तदनुसार हमारा विवेक भी अधिक सूक्ष्म होता जाएगा। यह उभयपक्षीय उन्नति धीरे-धीरे आत्मबल को बढ़ाती चलेगी और क्रमशः हम सत्य के अधिक निकट पहुँचते जाएँगे। इसी मार्ग पर चलते-चलते एक दिन पूर्ण सत्य की प्राप्ति हो जाएगी।

अनेकों परंपराएँ, प्रथाएँ, रीति-रिवाजें ऐसी प्रचलित हैं,जो किसी समय भले ही उपयुक्त रही हों,पर आज तो वे सर्वथा अनुपयोगी एवं हानिकारक ही हैं। ऐसी प्रथाओं एवं मान्यताओं के बारे में ऐसा न सोचना चाहिए कि "हमारे पूर्वज इन्हें अपनाते रहे हैं तो अवश्य इनका भी कोई महत्त्व होगा,इसलिए हम भी इन्हें अपनाए रहें।" हमें हर बात पर वर्तमान काल की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही कोई निर्णय करना चाहिए।

(अखण्ड ज्योति, अक्टूबर 1950,पृष्ठ- 5)

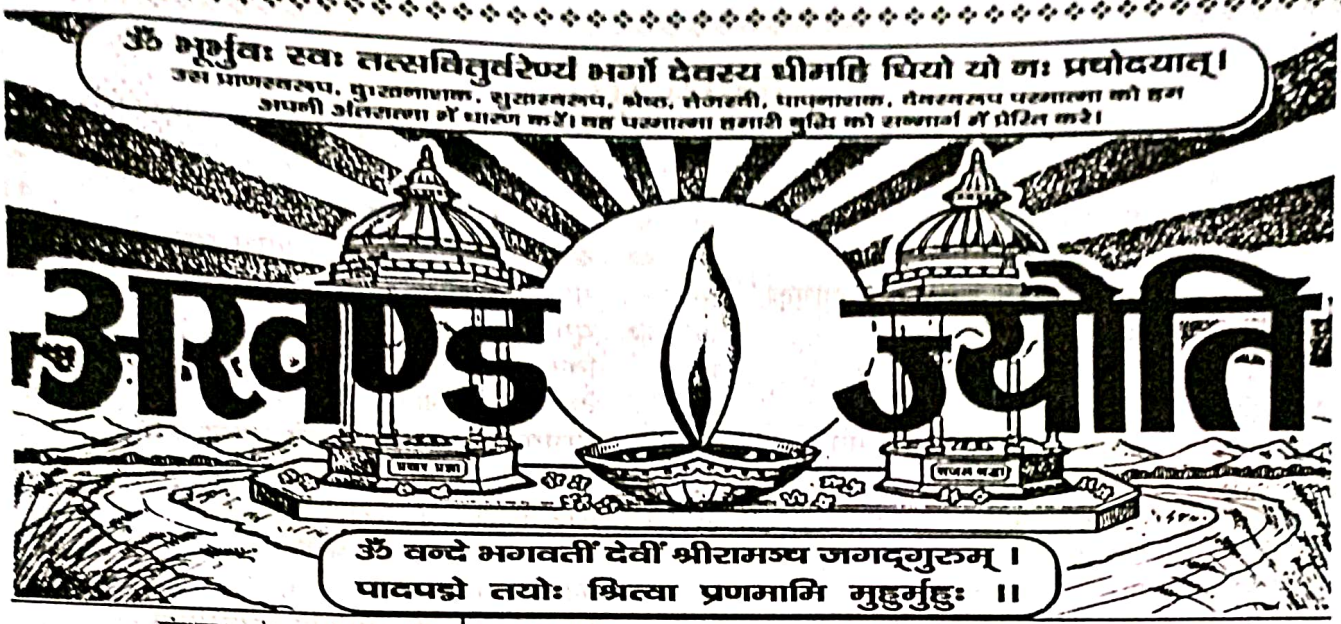

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	10
अक्टूबर	:	2025
आश्विन-कार्तिक	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.09.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से	:	540/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में सामान्य डाक से : 6000/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से (वार्षिक): +240/-

विदाई—तप-साधना के नवीन आयाम

(क्रमशः)

विदाई—तप-साधना के नवीन आयाम प्रकट करने आई। कभी किसी युग में मथुरा से श्रीकृष्ण विदा हुए थे। फिर वे वापस कभी मथुरा नहीं लौटे। फिर उन्होंने कभी भी यमुना के पुलिन पर अपना पाँव नहीं रखा। वृंदावन के कदंब वृक्षों ने, करील की कुंजों ने, सब ओर फैले तुलसी के पौधों ने, कालिंदी के कूलों ने उन्हें दोबारा कभी नहीं निहारा। अब वे इन सबकी आँखों से ओझल होकर इनके हृदय में बस गए। उन्होंने मथुरा का निवास छोड़कर द्वारका-वास स्वीकार किया।

इस युग में फिर से कुछ वैसी ही घटना घटी। इस बार प्रभु श्रीराम ने अपने भक्तों से विदा ली। वर्ष 1971 ई० के ज्येष्ठ मास की तपन में असंख्य आँखों ने आँसुओं से वर्षा की। वेदना से व्यथित, विकलता से विकल भक्तों-शिष्यों से विदा लेकर भगवान श्रीराम मथुरा का यमुनातट छोड़कर गंगातट की ओर चल पड़े। उनके हृदय में भक्तों की पीड़ा के साथ देश की पीड़ा व धरती की पीड़ा भी थी। नए कार्य के लिए उन्हें नया तप करना था। नई समस्याओं के लिए उन्हें ध्यान-समाधि में नए समाधान खोजने थे। इसी महान उद्देश्य के लिए उन्होंने हरिद्वार के गंगातट पर गंगाजल का स्पर्श कर गंगा के उद्गम की ओर प्रस्थान किया। देवात्मा हिमालय के रहस्यमय आध्यात्मिक चेतना के ध्रुवकेंद्र ने उनको आमंत्रित किया था। यहाँ पर उनकी चेतना में तप के नवीन आयाम प्रकट हुए। नवीन विद्याओं की साधना यहाँ संपन्न हुई। नवयुग के लिए नए निर्धारण हुए। इस हिमालय प्रवास की तप-साधना के निष्कर्ष में उन्हें युग प्रत्यावर्तन की सर्वथा नई कार्ययोजना प्राप्त हुई, जिसका क्रियान्वयन उन्हें भावी वर्षों में करना था। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 ... 1
- आवरण—2 ... 2
- विदाई—तप-साधना के नवीन आयाम ... 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  गुणवत्तापरक शिक्षा एवं शिक्षकों के दायित्व ... 5
- स्वयं ही उद्देश्य है भक्ति ... 9
- पूर्ण प्रकाश की ओर ... 11
- गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई ... 13
- सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम मंत्र है गायत्री मंत्र ... 15
- **पर्व विशेष—दीपावली पर्व**
  दीप पूजन का महापर्व ... 18
- सेवा परम धर्म है ... 21
- आदर्श सेवा ... 24
- विपत्ति में धैर्य एवं साहस का अवलंबन ... 26
- समस्त दुःखों को हरता है योग ... 28
- कुंठा से कुछ ऐसे उबरें ... 30
- कठिनाइयाँ कमजोरी नहीं, कंठहार हैं ... 32
- अनुशासन की महिमा एवं इसका स्वरूप ... 34
- वैज्ञानिक साक्ष्यों के आलोक में
  सदानीरा सरस्वती नदी ... 35
- विद्यार्थी जीवन में सफलता का आधार ... 38
- हमारे युवा भ्रमित क्यों हैं? ... 40
- जीवन में संतुलन है आवश्यक ... 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—198**
  सूफी संगीत पर शोध ... 43
- **युगगीता—305**
  विनाशशील में अविनाशी को
  देख पाने का ज्ञान ... 47
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  साहस जुटाएँ, संकल्प जगाएँ (उत्तरार्द्ध) ... 49
- **विश्वविद्यालय परिसर से—244**
  जीवन चेतना के उत्सव का
  केंद्र विश्वविद्यालय ... 57
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  प्रकाशित प्रशासन ... 60
- **अपनों से अपनी बात**
  प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा ... 63
- सच्चा पुण्य कमाएँ (कविता) ... 66
- आवरण—3 ... 67
- आवरण—4 ... 68

आवरण पृष्ठ परिचय

धर्म, सत्य और आदर्श जीवन के प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम

अक्टूबर-नवंबर, 2025 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	02 अक्टूबर	विजयादशमी/गांधी-शास्त्री जयंती
शुक्रवार	03 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
सोमवार	06 अक्टूबर	शरद् पूर्णिमा
मंगलवार	07 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती
शुक्रवार	10 अक्टूबर	करवा चौथ
सोमवार	13 अक्टूबर	अहोई अष्टमी
शुक्रवार	17 अक्टूबर	रमा एकादशी
रविवार	19 अक्टूबर	धनतेरस
सोमवार	20 अक्टूबर	रूप चतुर्दशी
मंगलवार	21 अक्टूबर	दीपावली
बुधवार	22 अक्टूबर	अन्नकूट/बेसतुबरस
गुरुवार	23 अक्टूबर	भाईदूज
रविवार	26 अक्टूबर	लाभ पंचमी
शुक्रवार	31 अक्टूबर	अक्षय नवमी
रविवार	02 नवंबर	देवप्रबोधिनी एकादशी
बुधवार	05 नवंबर	गुरुनानक जयंती/पूर्णिमा/देव दीपावली
शुक्रवार	14 नवंबर	बाल दिवस
शनिवार	15 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

गुणवत्तापरक शिक्षा एवं शिक्षकों के दायित्व

पूरा विश्व ज्ञान-विज्ञान की शक्ति से विदित है। कभी भारत इसी के बल पर विश्वगुरु के पद पर सुशोभित था और पूरे विश्व को मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के बहुमूल्य पाठ पढ़ा रहा था। धरती के कोने-कोने में भारत की देव संस्कृति के पदचिह्न किस रूप में अंकित हुए, इसकी झलक-झाँकी एवं कालजयी गाथा को परमपूज्य गुरुदेव की पुस्तक 'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान' का पारायण कर सहज रूप में पढ़ा व समझा जा सकता है। इसका केंद्रबिंदु हमारी शिक्षा-प्रणाली थी, जिसके आधारस्तंभ थे इसके तत्त्वदर्शी ऋषि एवं विषय निष्णात शिक्षक एवं आचारवान आचार्य।

आज पुनः किस रूप में इस शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करते हुए नए युग का सूत्रपात कर सकते हैं, इस पर विचार आवश्यक हो जाता है—जब समूचा शिक्षा तंत्र पुरातन शिक्षा मूल्यों से बहुत दूर जा चुका है। शिक्षा पूरी तरह से एक व्यवसाय बन चुकी है; इसका पुरातन मूल्य तंत्र चरमरा चुका है तथा इने-गिने शिक्षण संस्थान ही इसे एक पुनीत सेवाकार्य, समाज एवं राष्ट्र-आराधना के रूप में अपनाने के लिए सचेष्ट एवं तत्पर दिखते हैं।

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षण संस्थानों को मात्र नौकरी एवं इंडस्ट्री के लिए उत्पाद तैयार करने की फैक्टरी तक सीमित कर दिया है। पैकेज के आधार पर शिक्षण संस्थान की श्रेष्ठता का परिचय दिया जाता है। यहाँ शिक्षा के रोजगार को सुनिश्चित करने वाले पक्ष की उपेक्षा या आलोचना नहीं हो रही है, लेकिन शिक्षा को मात्र यहीं तक सीमित करना, शिक्षा के मूल उद्देश्यों से गंभीर विचलन एवं भटकाव की स्थिति को दरसाता है।

जबकि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का समग्र विकास है—उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष है। उसके अंदर तार्किक क्षमता, रचनात्मक चिंतन को विकसित करना है, एक जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनाकर समाज का एक उत्पाद-उपयोगी घटक, एक श्रेष्ठ नागरिक एवं अच्छा इनसान बनाना है, ताकि वह आगे चलकर समाज में समाधान का एक हिस्सा बनकर जिए न कि समस्या को और घनीभूत करने का माध्यम बने।

शिक्षा को भारतीय मनीषा ने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास, चारित्रिक गठन, नैतिक उत्थान एवं मानवीय मूल्यों से जोड़कर देखा है। परमपूज्य गुरुदेव ने शिक्षा के साथ विद्या के संगम-समन्वय की बात की।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में शिक्षा का मूल उद्देश्य—व्यक्तित्व का समग्र विकास है। मनुष्य में अंतर्निहित शक्तियों का जागरण व सकारात्मक दिशा में नियोजन है। विद्यार्थी को अपने पैरों पर खड़ा करना है, उसे आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बनाना है। साथ ही समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी एवं दायित्व बोध का विकास करना है। आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ना व जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की समझ विकसित करना है, जिससे उसमें नैतिक मूल्यों की समझ विकसित हो और वह चरित्र गठन के लिए सचेष्ट प्रयास कर सके।

शिक्षा के ये उद्देश्य कैसे पूर्ण हों व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा कैसे सुनिश्चित हो, इसमें शिक्षकों से लेकर शिक्षण संस्थानों की क्या भूमिका हो, इस पर विचार आवश्यक हो जाता है।

सर्वांगीण पाठ्यक्रम, इसका प्रथम चरण है, क्योंकि आज के विद्यार्थी ही कल के आचार्य हैं। ये जिस अनुपात में सर्वांगीण शिक्षा से दीक्षित होंगे, उसी अनुपात में नई पीढ़ी को पुरातन के साथ नूतन ज्ञान से लाभान्वित करवा पाएँगे। अपने विषय में आधुनिकतम विकास से अनभिज्ञ शिक्षक से अपने विषय के साथ न्याय की आशा नहीं की जा सकती। इसके लिए शास्त्रों के ज्ञान से लेकर आज के व्यावहारिक विज्ञान एवं आधुनिकतम टेक्नॉलोजी एवं विधाओं का ज्ञान आवश्यक है और ये सभी पाठ्यक्रम का अभिन्न हिस्सा होने चाहिए।

पढ़ाया जा रहा शैक्षणिक ज्ञान जीवन से किस रूप में जुड़ा हुआ है, इसका व्यावहारिक प्रशिक्षण भी शिक्षक से अपेक्षित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में इन सभी पक्षों का समुचित ध्यान रखा गया है। तात्त्विक रूप से इसमें व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक सभी पहलुओं का समावेश है।

स्नातक स्तर पर विद्यार्थी अपने मुख्य विषय के अतिरिक्त अपनी पसंद के किसी दूसरे विषय का चयन कर सकता है। इसमें पारंपरिक रूप में पढ़ाई जाने वाली कला, विज्ञान, प्रबंधन, कॉमर्स, मानवीकी, समाजशास्त्र आदि विषय की सीमाएँ गौण हो गई हैं। एक विद्यार्थी अपनी रुचि एवं भावी कैरियर के अनुरूप किसी भी विधा के विषयों का चयन कर सकता है। जिसमें भाषा से लेकर कौशल विकास एवं मूल्य शिक्षा पर समुचित ध्यान दिया गया है।

इसके लिए शिक्षा से जुड़े दूरदर्शी विजन एवं सम्यक मिशन से शैक्षणिक नेतृत्व, प्रशासन एवं शिक्षकों का संवेदित होना अभीष्ट है। अपने क्षेत्र के साथ अपने प्रांतीय मुद्दों की समझ-संवेदना आवश्यक है। साथ ही अपने समाज की समझ के साथ राष्ट्रीयता का भाव, अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव भी महत्त्वपूर्ण है।

साथ ही विश्व संवेदना एवं प्रकृति सहित जगत् के एक अभिन्न घटक के रूप में अपनी पहचान का बोध एक सही माने में शिक्षित व्यक्ति की पहचान बनती है, जो आगे चलकर वसुधैव कुटुम्बकम् के सांस्कृतिक आदर्श की ओर छात्रों को अग्रसर कराती है।

ये तत्त्व शिक्षा के पाठ्यक्रम के साथ शिक्षक की चिंतन-चेतना एवं भाव संवेदना के अभिन्न हिस्सा होने चाहिए। विशेषकर अकादमिक संस्थाओं को नेतृत्व दे रहे शीर्ष व्यक्तियों में तो इनका बोध होना अनिवार्य रूप से अभीष्ट है, जिससे कि ये मूल्य नीचे के नेतृत्व में भी संप्रेषित हो सकें। तभी वे उस समग्र शिक्षा के साथ न्याय कर पाएँगे, जिसमें युगऋषि शिक्षा के साथ विद्या का संगम करते हुए राष्ट्रनिर्माण एवं विश्व के कल्याण की बात करते हैं।

आज शिक्षा जिस तरह से अर्थ-उपार्जन एवं पैकेज निर्माण तक सीमित रह गई है, वह चिंता का विषय है। अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटी, अपने जीवन के उच्चतर ध्येय से अनभिज्ञ, अपने व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण के प्रति उदासीन, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की दृष्टि से विकलांग पीढ़ी को जन्म दे रही शिक्षा-व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन का समय आ गया है।

यह युग की माँग है, महाकाल की युगप्रत्यावर्तन प्रक्रिया का क्रांति आवाहन है, जिसके तेवर को समझकर हमें स्वयं को बदलने व ढालने के लिए तत्पर रहना चाहिए और युग-परिवर्तन का हिस्सा

बनने में सहयोग करना चाहिए। किसी भी स्कूल, कॉलेज या विश्वविद्यालय का केंद्र उसके ज्ञान का भंडारण स्थल, उसका समृद्ध ग्रंथालय होता है। यही इसके शोध-अनुसंधान की धुरी होता है। इसका हर दृष्टि से संपन्न होना अभीष्ट है। विषय से जुड़े हर ग्रंथ, पत्रिकाएँ, शोध, जर्नल, समाचारपत्र-पत्रिकाएँ यहाँ उपलब्ध होने चाहिए।

साथ ही युग के चलन के अनुरूप इसे ई-संसाधनों से संपन्न होना चाहिए। शिक्षकों का भी पावन कर्त्तव्य बनता है कि वे नित्य अपना कुछ समय यहाँ बिताएँ और विद्यार्थियों को पुस्तकालय के श्रेष्ठ उपयोग के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करें। इनकी सक्रिय भागीदारी के बिना नवसृजन एवं गंभीर शोध का महत्तर उद्देश्य अधूरा रह जाएगा।

इसके साथ पढ़ाई-लिखाई एवं शोध के लिए उपयुक्त वातावरण का सृजन आवश्यक है। शैक्षणिक संस्थानों में खेल-कूद से लेकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों, समाजसेवा व अन्य शिक्षणेतर गतिविधियों का सर्वांगीण विकास की दृष्टि से समावेश आवश्यक है लेकिन ये सब पढ़ाई-लिखाई, शोध एवं ज्ञान-साधना की कीमत पर नहीं होने चाहिए, जो कि किसी भी अध्ययन एवं शिक्षा केंद्र विशेषकर उच्चतर शिक्षा केंद्र का मूल उद्देश्य रहते हैं। यदि शिक्षण संस्थान ज्ञान-साधना के लिए उपयुक्त अकादमिक वातावरण देने में सक्षम नहीं हैं, तो फिर उनके विजन-मिशन पर प्रश्नचिह्न लगने स्वाभाविक हैं, जिस पर गंभीरतापूर्वक विचार किए जाने की आवश्यकता है।

समय के साथ कदमताल बिठाने के लिए शिक्षकों को अपने तकनीकी कौशल के साथ पेशेवर कौशल के विकास पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे वे अपने पेशेवर क्षेत्र में विद्यार्थियों का समुचित मार्गदर्शन कर सकें, उन्हें रोजगार के लिए उपयुक्त कौशल का व्यावहारिक प्रशिक्षण दे सकें व पाठ्यक्रम के निर्धारित परिणामों को सुनिश्चित कर सकें।

मात्र किताबें पढ़ाकर, नोट्स देकर परीक्षा को पास करने व उच्च अंक लाने के दिन लद चुके हैं। इंटरनेट व कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने इस तरह के ज्ञान व नोट्स के अंबार लगा दिए हैं, जो इंटरनेट पर सहज रूप में उपलब्ध हैं। जो वे नहीं कर सकते, वही कार्य शिक्षक का है।

इस ज्ञान को जीवन के साथ जोड़कर, इसके आधार पर समस्याओं के समाधान और जीवन को और सुंदर, खुशहाल एवं शांति-सौहार्दपूर्ण बनाने के तौर-तरीके शिक्षक के कार्यक्षेत्र हैं, जो शिक्षकों व विद्यार्थियों के मौलिक विचारमंथन के आधार पर शिक्षण संस्थानों की प्रयोगशाला से निकलने चाहिए।

प्रायः शिक्षण संस्थानों में अकादमिक एवं प्रशासनिक पक्षों में तालमेल का अभाव पाया जाता है, जिस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। शिक्षकों को जहाँ प्रशासनिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, वहीं प्रशासनिक अधिकारियों के भी शैक्षणिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिससे वे एकदूसरे के दायित्व को समझ सकें और एक दूसरे के प्रति संवेदनशील रवैया विकसित कर सकें।

यह तालमेल एवं सामंजस्य शिक्षण संस्थान में शैक्षणिक उत्पादकता एवं विद्यार्थियों के लिए श्रेष्ठतम वातावरण तैयार करने की दिशा में बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। इस पर समुचित ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, अन्यथा नौकरशाही के हाथों अकादमिक गुणवत्ता के दम घुटने की दुःखद घटनाएँ होती रहेंगी, जिसकी जिम्मेदारी से हम बच नहीं सकते।

प्रशासनिक नेतृत्व में सुयोग्य, सुपात्र, संवेदनशील, ईमानदार एवं जिम्मेदार व्यक्ति की

नियुक्ति इस दिशा में अभीष्ट है। शैक्षणिक स्थल में अमुक जिम्मेदारी के लिए निर्धारित योग्यता एवं कौशल का होना जहाँ आवश्यक है, वहीं उसमें अभीष्ट गुण एवं श्रेष्ठ आचरण को भी आधार बनाया जाना चाहिए। महज व्यक्ति की कागजी योग्यताओं, छल-छद्म एवं धूर्तता के आधार पर एकत्रित किए गए दस्तावेजों के चलते कुपात्रों का शिक्षण संस्थानों के पदों पर काबिज होना शैक्षणिक गुणवत्ता के साथ खिलवाड़ है, जिसका खामियाजा विद्यार्थियों से लेकर पूरा समाज एवं राष्ट्र भुगतने के लिए अभिशप्त होता है।

आएदिन समाचारपत्रों में शैक्षणिक क्षेत्र में परीक्षा पत्र लीक होने से लेकर डिग्रियाँ बिकने की ब्रेकिंग न्यूज शिक्षा-क्षेत्र में पसरी ऐसी ही रुग्णता की ओर संकेत करती है। इस संदर्भ में अकादमिक गुणवत्ता को लेकर शीर्ष नेतृत्व की सजग, सचेष्ट एवं ईमानदार पहल निर्णायक महत्त्व रखती है।

ऐसे ही प्रोन्नति की कसौटी महज कागजी दस्तावेज, जोड़-तोड़ वाले हथकंडे एवं तथाकथित वरिष्ठता नहीं हो सकती। इनके साथ व्यक्ति के सद्गुणों एवं सत्कर्मों का भी मूल्यांकन महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इस संदर्भ में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के बीच एक निष्पक्ष सर्वेक्षण एवं फीडबैक तंत्र के आधार पर न्यायोचित निर्णय लिया जा सकता है। मूल्य शिक्षा, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास से जुड़ा एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जो अधिकांश शिक्षण संस्थानों में उपेक्षित है, जिस पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता; जबकि समय की माँग के अनुरूप इस दिशा में गंभीर विचार की आवश्यकता है।

सर्वोपरि शिक्षक को जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनते हुए अपने सर्वांगीण विकास के साथ आत्मपरिष्कार एवं चरित्र गठन की प्रक्रिया में संलग्न रहने की आवश्यकता है। तभी सही माने में शिक्षक अपने छात्र-छात्राओं को जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनने में कुछ सहयोग कर पाएँगे और एक आदर्श साँचा बनकर ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों पर आधारित शिक्षा का हस्तांतरण कर पाएँगे, जिसके आधार पर भारत को शिक्षा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभानी है और समूचे विश्व का मार्गदर्शन करना है। ❑

एक विद्यालय में एक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। प्रतियोगिता का विषय था—हम प्राणियों की सेवा कैसे कर सकते हैं? विद्यालय में प्रतियोगिता प्रारंभ हो गई। प्रतियोगिता के वक्ता सामाजिक कल्याण संबंधी पुस्तकों, धर्मग्रंथों व महापुरुषों के प्रवचनों का निचोड़ प्रस्तुत कर बताने लगे कि प्राणियों की सेवा कैसे की जा सकती है?

प्रतियोगिता में अपना नाम देने वाला एक विद्यार्थी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए बहुत विलंब से पहुँचा। प्रतियोगिता के संयोजकों व शिक्षकों ने उससे विलंब का कारण पूछा, तब उसने बतलाया कि जब वह विद्यालय जा रहा था तो रास्ते में उसने देखा कि एक लड़के को भीषण चोट लग गई है, अतः वह उस लड़के को अस्पताल पहुँचाकर आया है। इसीलिए आने में विलंब हो गया। प्रतियोगिता में उसी छात्र को प्रथम पुरस्कार दिया गया। उसने भाषण देने के स्थान पर अपनी करनी द्वारा स्पष्ट कर दिया था कि प्राणियों की सच्ची सेवा कैसे की जा सकती है?

स्वयं ही उद्देश्य है भक्ति

भगवत्प्राप्ति के विभिन्न साधनों में भक्ति निस्संदेह एक अत्यंत सहज व सरल साधन है। भक्ति के दो प्रकार हैं—सकाम भक्ति और निष्काम भक्ति। सकाम भक्त भगवान की भक्ति के बदले अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति चाहता है, पर निष्काम भक्त निष्काम भक्ति करता है। वह भगवान से कुछ नहीं चाहता, बल्कि वह एकमात्र भगवान को ही चाहता है। इसलिए निष्काम भक्ति को श्रेष्ठ और सर्वोपरि कहा गया है।

निष्काम भक्ति में कोई याचना, कोई कामना होती ही नहीं। निष्काम भक्त के हृदय में भगवान के लिए बस, प्रेम की अखंड रसधार बहती जाती है और भक्त भगवत्प्रेम का नित्य निरंतर रसपान करता जाता है। इसलिए भक्ति स्वयं ही साध्य बन जाती है और इस प्रकार भक्त भक्ति से भक्ति को ही प्राप्त करता है। भक्ति स्वयं ही उद्देश्य है। भक्ति वह प्यास है, जो कभी मिटती नहीं और जब मिटती है तो प्यासा ही नहीं रहता।

यही वह अवस्था है, जिसमें भक्त भगवत्प्रेम में डूबकर भगवद्रूप हो जाता है। भक्त भगवान में लीन हो जाता है, विलीन हो जाता है। आत्मा में परमात्मा प्रकट हो जाते हैं और तब भक्त को चरमानंद, परमानंद, ब्रह्मानंद का अनुभव होता है, पर भक्त को यह अवस्था रातोंरात प्राप्त नहीं हो जाती। इस अवस्था को पाने के लिए भक्त को कामनारहित होकर भगवान को पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण कर देना होता है।

आत्मा को परमात्मा से जोड़ने के लिए अथवा आत्मा में परमात्मा को प्रकट होने देने के लिए उसे सदैव भगवद्ध्यान, भगवद्नामस्मरण, भगवद्भजन, आत्मसमर्पण, संयम, सेवा, स्वाध्याय और सत्संग में निरत रहना होता है।

भक्ति के द्वारा भक्त को आत्मानुभूति, परमात्मानुभूति सहज ही होने लगती है। उसे सहज ही आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन होने लगता है। इसलिए भक्त को भगवान के जिस किसी रूप, नाम में रुचि है, प्रेम है भगवान के उसी रूप का, छवि का अपने हृदय में नित्य ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय भगवद्नामस्मरण अर्थात इष्ट मंत्र का बहुत ही श्रद्धा, भक्ति व विश्वास के साथ जाप करते रहना चाहिए।

उसे भगवद्भजन करते हुए, भगवान के लिए व्याकुल होकर विलाप करना चाहिए। जैसे मेहँदी के पिसने पर मेहँदी से लाली प्रकट होती है, जैसे दुग्ध के मंथन से दुग्ध से मक्खन प्रकट होता है, जैसे चंदन को घिसने पर खुशबू प्रकट होती है, वैसे ही नाम से नामी प्रकट होता है। नामी नाम से अभिव्यक्त होता है। नामी नाम में ही होता है। जैसे बीज से वृक्ष प्रकट होता है, वैसे ही नाम से नामी प्रकट होता है।

मंत्र से मंत्र के देवता, भगवान प्रकट होते हैं। मंत्र में निहित आराध्य देव, भगवान प्रकट होते हैं; क्योंकि मंत्र देवता अथवा भगवान का शब्द शरीर है, जिसके नित्य-निरंतर जाप करने से उससे भगवान, हमारे हृदय में प्रकट होते हैं। भगवान की शक्ति हमारे हृदय में प्रकट होती है। आराध्य, भगवान हमारे हृदय में प्रकट होते हैं। बार-बार भगवान की मधुर-मनोहर छवि का अपने हृदय में ध्यान करने

से हृदय में अद्वितीय, अलौकिक शीतलता की आनंदानुभूति होने लगती है।

इस प्रकार निरंतर आत्मा में परमात्मा का ध्यान करने से आत्मा परमात्मा में लीन होने लगती है और भक्त को सर्वशक्तिवान प्रभु की शक्तियों का रसास्वादन होने लगता है। उसके अंदर से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि पंचविकार मिटने लगते हैं और उसमें करुणा, प्रेम, सत्य, संवेदना आदि दैवी भावों के रूप में देवत्व का जागरण होने लगता है।

वह स्वभावतः ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि में प्रतिष्ठित होता जाता है। वह सीधा-साधा जीवन व्यतीत करता है। ईमानदारीपूर्वक जीविकोपार्जन करना, स्वयं के पुरुषार्थ से जो कुछ प्राप्त हो, उसमें संतुष्ट रहना, सुख-दुःख में मनःस्थिति को समान रखना, कभी किसी का बुरा न करना, न सोचना। सच्ची कमाई और सदाचार के साथ उपार्जित धन से साधु-संतों की सेवा करना व दीन-हीनों से प्रेम करना आदि सच्चे भगवद्भक्त की स्वाभाविक वृत्तियाँ बन जाती हैं।

भगवद्साक्षात्कार हो जाने पर भक्त के मुखमंडल पर अलौकिक आभा स्वतः ही उभर आती है। उसके हृदय में सदा बने रहने वाला आह्लाद उतर आता है। मन शांत और प्रफुल्लित हो उठता है। मृदु स्वभाव, महान विचार, आत्मानुभव, आत्मबल, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के कारण उसके अंदर एक ऐसी प्रतिभा जाग्रत हो जाती है कि जो भी उसके संपर्क में आता है, वह मंत्रमुग्ध हो जाता है।

संघर्षों और घोर कठिन परिस्थितियों में भी उसके अंतस् में आनंद के स्वर फूटते रहते हैं। वह संसार में रहते हुए भी संसार से निर्लिप्त रहता है। वैसे ही, जैसे जल में रहकर भी कमल जल से निर्लिप्त रहता है। वह भगवान की अनुकंपा के सहारे रहता है, जो आंतरिक व बाह्य दोनों शत्रुओं से उसकी सदैव रक्षा करता है। उसका आध्यात्मिक उत्थान तो प्रभु के सामीप्य से पहले ही हो चुका होता है। साथ ही उसे भौतिक समृद्धि भी प्राप्त होती है। इस तरह वह हर दृष्टि से लाभ-ही-लाभ में रहता है।

इस संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर के साथ साझेदारी घाटे का नहीं, बल्कि हर दृष्टि से फायदे का ही सौदा है। यह वह साझेदारी है, जिसमें आध्यात्मिक और भौतिक दोनों उत्थान सुनिश्चित हैं। अस्तु भगवत्प्राप्ति जैसे परमानंद की अवस्था को प्राप्त करने के इच्छुक साधकों को चाहिए कि वे आहार, निद्रा, भय और मैथुन प्रधान पशुवत् जीवन का त्याग कर आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर हों।

द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत्।

अर्थात द्वेष रखने वाले का भोजन कभी नहीं खाना चाहिए और न उसे खिलाना चाहिए।

—महा० उद्योग पर्व 91/31

भगवान करुणानिधान हैं। वे सब पर करुणा करने वाले हैं। अस्तु हमें भी भगवान की शरण ग्रहण कर स्वयं को पूर्णरूपेण भगवान को समर्पित करने में अब कतई विलंब अथवा संकोच नहीं करना चाहिए। अपनी समस्त कामनाओं, इच्छाओं को भगवान को ही समर्पित कर भगवान की निष्काम भक्ति करें; क्योंकि निष्काम भक्ति से निस्संदेह भगवत्प्राप्ति होती है।

अपने जीवन में नित्य-निरंतर भगवद्ध्यान, भगवद्नामस्मरण, मंत्र जाप, संयम, सेवा, स्वाध्याय व सत्संग का आश्रय लेकर स्वयं को भगवान को समर्पित कर निष्काम भक्ति करनी चाहिए। ❑

पूर्ण प्रकाश की ओर

हमारा जीवन सतत उत्थान की एक यात्रा है, परंतु हममें से अधिकांश लोग इस सत्य से अनभिज्ञ बने रहते हैं कि हमें वास्तव में जाना कहाँ है। हम किस चीज के इच्छुक हैं, हमारा मार्ग कहाँ पर समाप्त होगा। वास्तव में हम जिसे चाहते हैं, वह पूर्ण प्रकाश ही है। वह हमें मिलेगा अपने आत्मानुसंधान से, अपनी प्रतिभा को जाग्रत कर जीवन को नवरूप प्रदान करने में।

जिसे हम अध्यात्म कहते हैं, वह एक आत्मिक जाग्रति का नाम है, जिसमें व्यक्ति का चिंतन एवं क्रियाकलाप किसी अदृश्य शक्तिस्रोत से परिचालित होता दिखाई पड़ता है। उसका जीवन उसकी आत्मा का प्रतिनिधि तथा सदा एकरूप हुआ ईश्वरीय अनुकंपा का अधिकारी बनता है। ऐसा व्यक्ति अपने भीतर की दैवी उमंग को गतिशील करने हेतु उसे ही अपना उपकरण तथा साथी बनाता है व ईश्वर ही उसके सभी क्रियाकलापों का अभिन्न अंग तथा एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

जिसने ईश्वर को अपनी सत्ता को सौंप दिया, उसे किसी बात की चिंता करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। ईश्वर वह शक्ति है, जो जीवन को पूर्ण परिवर्तित कर देती है। जिसके पास ईश्वररूपी संपदा है, वह कभी हार नहीं सकता है, उसके पास धरती का अमृत तथा सदा रहने वाली शांति का उपाय है। जो ईश्वर को समझ गया, उसका जीवन परिपूर्णता को प्राप्त करता है। उसे संसार में किसी भी प्रकार की आसक्ति या ममता-मोह के बंधन में नहीं फँसना पड़ता।

ऐसा इसलिए क्योंकि उसका अंत:करण ईश्वरीय भावना से इतना ओत-प्रोत हो जाता है कि हर प्रकार की परिस्थिति में वह स्वयं को निश्चिंत पाता है। उसके भीतर का दैवी प्रकाश सदा प्रस्फुटित होकर उसे ईश्वरीय पथचिंतन का आदेश देता है एवं तब उसका प्रत्येक क्रियाकलाप उसी की सेवापूर्ति में लगता है।

ऐसा करने वाला कभी घाटे में नहीं रह सकता है; क्योंकि जिस शक्ति से वह परिचालित है, वह अत्यंत ही महान है। उसकी आभा का दर्शन करने के लिए हमें योग्य अंत:करण की आवश्यकता है। ईश्वर वह अग्निपुंज है, जो यदि एक बार किसी के भीतर प्रवेश कर जाए तो सभी कषाय-कल्मषों को जलाकर उसकी आत्मा को प्रकाशित कर देता है। वह निर्विकार हुआ एकमात्र अपने स्रोत से जुड़ने की अभिलाषा के साथ चल पड़ता है।

यही ईश्वरीय विधान है। हम उस पथ पर चलें, जिससे कि परमात्मा की प्राप्ति होती हो। यदि हमारा जीवन किसी प्रकार उसकी दिशा में नहीं बढ़ पा रहा है तो यह अत्यंत ही दुर्भाग्य का विषय है; क्योंकि जिसकी आत्मा उसके संसर्ग से अभिदीप्त नहीं हुई है, वह मात्र इस संसार के झंझावातों से ही स्वयं को परिचालित कर रहा है।

उसके भीतर की यथार्थता या सौंदर्य की उपस्थिति का उसे बोध नहीं। वह अपनी आत्मचेतना से अनभिज्ञ है तथा ऐसा व्यक्ति कभी भी जीवन में वास्तविक उत्थान को प्राप्त नहीं करता है। जब तक हम उसे नहीं समझ लेते जो कि हमारे सभी क्रियाकलापों का आधार है, जिससे हमारी चेतना

प्रेरित एवं अधिसंचालित होती है तथा जो जीवन में धन्यता का विषय है—तब तक किसी भी प्रकार की प्रगति या उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता है। हमें यह समझना होगा कि पूर्ण प्रकाश किसी अदृश्य लोक की घटना नहीं, बल्कि हमारे ही भीतर की वह क्रांति है, जिसके बाद जीवन नवरूप को प्राप्त करता है, हर प्रकार के व्याधि-विकार से परे एकनिष्ठ हो ईश्वर की सेवा में तत्पर खड़ा दिखाई देता है। यही आत्मजाग्रति है, जिसका सुफल है, व्यक्तित्व का विकास एवं पूर्णतः उत्सर्ग के मार्ग पर बढ़ चलना। ❑

एक बार एक व्यक्ति को टहलते हुए अपने बाग में किसी टहनी से लटकता हुआ एक तितली का कोकून दिखाई पड़ा। अब हर रोज वह व्यक्ति उसे देखने लगा और एक दिन उसने देखा कि उस कोकून में एक छोटा-सा छेद बन गया है। उस दिन वह वहीं बैठ गया और घंटों उसे देखता रहा। उसने देखा कि तितली उस खोल से बाहर निकलने की बहुत कोशिश कर रही है, पर बहुत देर तक प्रयास करने के बाद भी वो उस छेद से नहीं निकल पाई और फिर वो बिलकुल शांत हो गई, मानो उसने हार मान ली हो। उस व्यक्ति ने उस तितली की मदद करने के उद्देश्य से कोकून के सुराख को इतना बड़ा कर दिया कि वो तितली सरलतापूर्वक बाहर निकल सके।

यही हुआ। तितली बिना किसी संघर्ष के आसानी से बाहर निकल आई, पर उसका शरीर सूजा हुआ था और पंख सूखे हुए थे। वह व्यक्ति यह सोचकर तितली को देखता रहा कि वह किसी भी समय पंख फैलाकर उड़ेगी। पर बेचारी तितली कभी उड़ नहीं पाई और उसे अपनी बाकी जिंदगी इधर-उधर घिसटते हुए ही बितानी पड़ी।

दरअसल, वह व्यक्ति अपनी दया और जल्दबाजी में यह नहीं समझ पाया कि कोकून से निकलने की प्रक्रिया को प्रकृति ने इतना कठिन इसलिए बनाया है, ताकि ऐसा करने से तितली के शरीर में मौजूद तरल पदार्थ उसके पंखों में पहुँच सके और वो छेद से बाहर निकलते ही उड़ सके।

वास्तव में कभी-कभी हमारे जीवन में संघर्ष ही वह चीज होती है, जो हमें मजबूत बनाती है। यदि हम बिना संघर्ष के सब कुछ पा लेंगे तो अपंग हो जाएँगे, हमारी शक्तियों का विकास नहीं हो पाएगा।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई

गुरु की वंदना करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में कहते हैं—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

अर्थात मैं उन गुरु महाराज के चरण कमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नररूप में श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महा मोहरूपी घने अंधकार का नाश करने के लिए सूर्यकिरणों के समूह हैं।

गोस्वामी जी के कहने का तात्पर्य यह है कि साक्षात् श्रीहरि अर्थात साक्षात् नारायण ही नररूप में गुरु हैं, जो शिष्यों के अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने वाले सूर्य हैं। इस शब्द के प्रथम अक्षर 'गु' का अर्थ 'अंधकार' है; जबकि दूसरे अक्षर 'रु' का अर्थ उस अंधकार को हटाने वाला है। अस्तु गुरु वह है, जो शिष्य के अज्ञानरूपी अंधकार को मिटा कर उसे प्रकाश की ओर ले जाता है। दरअसल गुरु दिखते तो सामान्य हैं, पर सामान्य हैं नहीं। वे दिखते साधारण हैं, पर हैं असाधारण।

वे नर के वेश में नारायण ही हैं; क्योंकि उनकी आत्मा में नारायण, ब्रह्म पूर्णरूपेण प्रकाशित हैं। वे शिष्य की आत्मा को अपने ब्रह्मज्ञान से प्रकाशित करने आए हैं, अस्तु गुरु वस्तुतः ऐसी मुक्त हो गई चेतनाएँ हैं जो हैं तो बुद्ध, कृष्ण और राम जैसी, लेकिन दिखतीं हमारे और आप जैसी ही हैं। नारायण होते हुए भी वे दिखतीं नर जैसी ही हैं। माधव होते हुए भी वे दिखतीं मानव जैसी ही हैं, अस्तु जिनमें अपार श्रद्धा है, विश्वास है, प्रेम है, अनुराग है, वे नररूप में आए हुए नारायण को पहचान कर, पाकर उनके उपदेश पर चलकर संसाररूपी भवसागर को पार कर अपने निजस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप को पा लेते हैं।

जिनमें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, अनुराग शून्य हैं वे उनके पास होते हुए भी न तो उन्हें पहचान पाते हैं और न ही भवसागर पार हो पाते हैं। वे संसाररूपी दुःख सागर में तड़पते हुए, जीवन और मृत्यु के चक्रव्यूह में ही फँसे रहते हैं और नानाविध दुःख पाते हैं। अस्तु यदि हम अपना सर्वविध कल्याण चाहते हैं तो हमें ब्रह्मज्ञानी गुरु के प्रति अपना संपूर्ण समर्पण कर उनके बताए मार्ग पर अविलंब चल पड़ना चाहिए।

उनके बताए मार्ग पर चले बिना हमारा कल्याण कतई संभव नहीं। बिना ब्रह्मज्ञानी गुरु के भवसागर पार कर पाना संभव नहीं। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में कहा है—

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

अर्थात गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्मा जी और शंकर जी के समान ही क्यों न हो। सद्गुरु ही तो अपने सद्ज्ञान से, ब्रह्म ज्ञान से हमें अपने निजस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप का बोध कराते हैं।

गुरु का ज्ञानामृत पा लेने पर शिष्य में न तो मोह उत्पन्न होता है न ही उस पर दैहिक, दैविक, भौतिक तापों (दुःखों) का प्रभाव होता है और न ही वह सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, पाप-पुण्य के बंधन में बँध पाता है; क्योंकि वह इन सबसे परे और मुक्त हो जाता है और परब्रह्म को पाकर वह सदैव

ब्रह्मानंद की स्थिति में रहता है, पर हाँ! सर्वप्रथम ऐसे सद्गुरु को पाने की हममें तीव्र अभीप्सा होनी चाहिए और ऐसे सद्गुरु को पाते ही हमें उनके बताए मार्ग पर तत्काल चल पड़ना चाहिए।

उस मार्ग पर चलते रहने से ही हमें वह सब कुछ प्राप्त हो सकेगा और जिसे पा लेने पर कुछ और पाना शेष ही नहीं रहेगा। गुरु की इसी महिमा के कारण ही तो कहा गया है—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े,
काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने,
जिन गोविंद दियो बताय॥

जब भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण आदि अवतार धरा पर आए, तब उन्होंने भी महर्षि वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र और सांदीपनि मुनि जैसे ब्रह्मनिष्ठ संतों, ऋषियों की शरण में जाकर ज्ञान की प्राप्ति की और ऐसा करके उन्होंने मानवमात्र के कल्याण के लिए सद्गुरु की महिमा का महान संदेश इस संसार को प्रदान किया।

अस्तु हमें भी पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी की शरणागति पाकर अपने आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर लेना चाहिए। ❑

द्वारकाधीश कृष्ण पांडवों के संधिदूत बनकर आ रहे थे। दुःशासन का भवन जो राजभवन से भी सुंदर था, वासुदेव के लिए वह खाली कर दिया गया था। धृतराष्ट्र ने आदेश दिया कि हमारे यहाँ की सर्वोत्तम वस्तुएँ दुःशासन के भवन में एकत्र कर दी जाएँ और वासुदेव को भेंट कर दी जाएँ। दुर्योधन के मन में यद्यपि प्रेम नहीं था तथापि वह पिता की आज्ञा का पालन कर रहा था। उसने भवन, मार्ग आदि इस तरह सजवा दिए थे कि वे हस्तिनापुर के इतिहास में बेजोड़ थे।

द्वारकाधीश कृष्ण का रथ आया। नगर से बाहर जाकर दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि सम्माननीय पुरुषों व भाइयों के साथ उनका स्वागत किया। उनके साथ सब नगर में आए। दुर्योधन विनम्रतापूर्वक बोला—"पधारें वासुदेव!" मगर वासुदेव बोले—"आपके उदार स्वागत के लिए धन्यवाद, किंतु दूत का कर्त्तव्य है कि जब तक उसका कार्य पूर्ण न हो, वह दूसरे पक्ष के यहाँ भोजनादि न करे। जो भूख से मर रहा हो, वह चाहे जहाँ भोजन कर लेता है, किंतु जो भूखा नहीं है, वह दूसरे घर तभी भोजन करता है, जब उसके प्रति वहाँ प्रेम हो। भूख से मैं मर नहीं रहा हूँ और प्रेम आपमें है नहीं।" द्वारकाधीश का रथ मुड़ गया विदुर के भवन की ओर। उनके लिए जो दुःशासन का भवन सजाया गया था, उसकी ओर तो उन्होंने देखा भी नहीं, इसीलिए तो कहा है—भाव के भूखे हैं भगवान।

सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम मंत्र है गायत्री मंत्र

आत्मिक, आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनेकों साधनापद्धतियाँ प्रचलित हैं, पर उन सबमें गायत्री उपासना निस्संदेह सर्वोपरि है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की आत्मिक प्रगति में जिस शक्ति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, वह है—'प्रज्ञा'। सभी शक्तियों में सर्वप्रमुख सर्वोपरि और सर्वाधिक प्रभावशाली प्रज्ञाशक्ति है और प्रज्ञाशक्ति का ही दूसरा नाम है—गायत्री। प्रज्ञातत्त्व का ही दूसरा नाम है—गायत्री। प्रज्ञा अर्थात दूरदर्शी विवेकशीलता। प्रज्ञाशक्ति शिष्य को आत्मिक दृष्टि से सुविकसित एवं सुसंपन्न बनाती है।

यदि व्यक्ति में प्रज्ञा की अभीष्ट मात्रा विद्यमान हो तो फिर ऐसी कोई कठिनाई शेष नहीं रह जाती, जो उसे नर से नारायण, मानव से माधव और पुरुष से पुरुषोत्तम बनने से वंचित कर सके। यदि व्यक्ति को प्रज्ञा-प्रखरता प्राप्त हो सके तो वह भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों ही दृष्टि से उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है।

गायत्री-उपासना उसी प्रज्ञा को, प्रज्ञाशक्ति को, प्रज्ञा-प्रखरता को, दूरदर्शी विवेकशीलता, साहसिकता को प्राप्त करने की वैज्ञानिक पद्धति है। प्रज्ञा वह आत्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि है, जिसके प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति की जीवन-दृष्टि पूर्णतः बदल जाती है। वह दृष्टि जीवन को और जगत् को उस दृष्टि से नहीं देखती, जिससे प्रायः सामान्य लोग देखते हैं। जैसे हंस पानी से दुग्ध को अलग कर देता है, वैसे ही प्रज्ञाशक्ति दूरदर्शी व्यक्ति विवेकशीलता के कारण संसार में रहकर भी संसार से अलग रहता है। वह संसार में रहता है, पर संसार उसमें नहीं रहता।

प्रज्ञा दृष्टि से वह नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य ही देखता है और मानता है एवं तदनुरूप ही वह जीवन में व्यवहार करता है। प्रज्ञाशक्ति से उसे आत्मदृष्टि प्राप्त होती है और आत्मदृष्टि से उसे अपनी आत्मा में ब्रह्म के दर्शन होने लगते हैं। आत्मा में ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त हो जाने पर उसे यत्र-तत्र-सर्वत्र ब्रह्म ही दृष्टिगोचर होते हैं। वह सृष्टि के कण-कण में ब्रह्म को अभिव्यक्त होते हुए देखता और अनुभव करता है। उस अवस्था में उसे संपूर्ण सृष्टि ब्रह्म की ही भौतिक अथवा साकार अभिव्यक्ति जान पड़ती है।

इस प्रकार आत्मा में ब्रह्मानुभूति हो जाने पर उसे पल-पल ब्रह्मानंद की अनुभूति होती रहती है। उसके भीतर करुणा, प्रेम, संवेदना आदि दिव्य भाव उमगने-उमड़ने लगते हैं अर्थात उसके भीतर देवत्व का जागरण होने लगता है और उसका लोक व्यवहार भी देवतुल्य हो जाता है। वह भौतिक क्षेत्र में भी समृद्ध और संपन्न होता जाता है।

गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ परमपूज्य गुरुदेव यह स्पष्ट करते हैं कि 'गायत्री की स्थूलधारा सावित्री को जो जितनी मात्रा में धारण करता है, वह भौतिक क्षेत्र में उतना ही समृद्ध व संपन्न बनता जाता है और वहीं गायत्री की चेतनात्मक धारा सद्बुद्धि के रूप में, ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में काम करती है एवं जहाँ और जिस व्यक्ति में उसका विकास तथा निवास होता है, वहाँ और उसमें ब्राह्मणत्व एवं देवत्व का अनुदान बरसता चला

जाता है, साथ ही आत्मबल के साथ जुड़ी हुई दिव्य विभूतियाँ भी उस व्यक्ति में बढ़ती चली जाती हैं।'

पूज्यवर आगे कहते हैं कि 'वह गायत्री से प्राप्त प्रज्ञाशक्ति से अपने जीवनस्तर को ऊँचा उठा कर महामानवों के उच्च स्तर तक पहुँचता जाता है और वह सामान्य जीवात्मा न रहकर महात्मा, देवात्मा एवं परमात्मा स्तर की क्रमिक प्रगति करता चला जाता है और यह भी सत्य है कि जहाँ आत्मिक संपन्नता होगी, वहाँ उसकी अनुचरी भौतिक समृद्धि की भी कमी नहीं पड़ेगी। यह बात अलग है कि आत्मिक क्षमताओं का धनी व्यक्ति उन्हें निम्न प्रदर्शन में खरच न करके किसी महान प्रयोजन में नियोजित करता रहे और उससे निस्सृत आत्मिक आनंद प्राप्त करता रहे।'

गायत्री मंजरी में कहा गया है कि 'विद्वानों ने गायत्री को भूलोक की कामधेनु माना है और उसका आश्रय लेकर हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं।' वृ.5.14.7 में गायत्री के विषय में कहा गया है कि 'हे गायत्री! तुम तेजरूप हो, निर्मल प्रकाश रूप हो, अमृत एवं मोक्षरूप हो, चित्तवृत्तियों का निरोध करने वाली हो, देवों की प्रिय आराध्या हो, देवपूजन का सर्वोत्तम साधन हो। हे गायत्री! तुम इस विश्व-ब्रह्मांड की स्वामिनी होने से एकपदी, वेद विधा की आधारशिला होने से द्विपदी, समस्त प्राणशक्ति का संचार करने से त्रिपदी और सूर्य मंडल के अंतर्गत परम तेजस्वी पुरुषों की आत्मा होने से चतुष्पदी हो! रज से परे हे भगवती! श्रद्धालु, साधक सदा तुम्हारी उपासना करते हैं।'

गायत्री तत्त्व श्लोक—1 के अनुसार—'गायत्री साधना से सच्चिदानंद लक्षण वाला ब्रह्म प्रकाशित होता है अर्थात ज्ञात होता है। दरअसल गायत्री मंत्र जप और सविता देवता का नित्य व दीर्घकाल तक ध्यान करते रहने से साधक में प्रज्ञाशक्ति विकसित होती है। उसकी बुद्धि पवित्र और प्रकाशित होती है और वह सद्बुद्धिसंपन्न होता जाता है। प्रज्ञा तत्त्व का प्रधान कार्य साधक में सत्-असत् निरूपिणी बुद्धि का परिष्कार करना है।'

बुद्धि का परिष्कार होने पर प्रथम चमत्कार यह होता है कि मनुष्य वासना, तृष्णा की प्रवृत्तियों से ऊँचा उठकर मनुष्योचित धर्म, कर्म को समझने और तदनुरूप जीवन जीने के लिए अंतःप्रेरणा प्राप्त करता है और साहसपूर्वक आदर्शवादी जीवन, आत्मपरायण जीवन जीने की दिशा में उत्साहपूर्वक चल पड़ता है और उसके भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

गायत्री की साधना के द्वारा आत्मा पर जमे हुए मल-विक्षेप हट जाते हैं, तो आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है, जैसे बादलों के हटते ही सूर्य के प्रकाश से सारा आकाशमंडल प्रकाशित हो उठता है, वैसे ही गायत्री मंत्र जप और सविता ध्यान के प्रभाव से आत्मा पर चढ़े हुए मल-विक्षेप मिट जाते हैं और आत्मा का वास्तविक स्वरूप अर्थात सत्-चित्-आनंदस्वरूप प्रकट हो जाता है और वह ईश्वरीय गुणों, सामर्थ्यों और सिद्धियों से परिपूर्ण हो जाती है। आत्मा के भीतर की दिव्य विशेषताएँ सहज ही प्रकट और प्रखर हो जाती हैं और फलस्वरूप साधक अपने अंतःक्षेत्र में स्वर्ग और मुक्ति जैसा आनंद उठाता है और अपने साथ-साथ अनेकों को धन्य बनाता है।

गायत्री-उपासना उस 'प्रज्ञा' को आकर्षित करने और धारण करने की अनुभूत प्रक्रिया है, जो परब्रह्म की विशिष्ट अनुकंपा, दूरदर्शी विवेकशीलता और सन्मार्ग पर चल पड़ने की साहसिकता के रूप में साधक को प्राप्त होती है। इस अनुदान को पाकर साधक न सिर्फ स्वयं धन्य बनता है, बल्कि समूचे वातावरण में मानो मलय पवन का संचार

करता है। उसके व्यक्तित्व से सारा संपर्क क्षेत्र प्रभावित होता है और सुखद संभावनाओं का प्रवाह चल पड़ता है।

गायत्री मंत्र का सीधा-सा अर्थ है कि 'भगवान सविता के श्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं। वह सविता देव हमारी बुद्धि को पवित्र और प्रकाशित कर हमें सन्मार्ग पर चलाएँ।' अस्तु भौतिक उत्कर्ष की आकांक्षा हो अथवा आत्मिक उत्कर्ष की, दोनों ही दृष्टि से गायत्री उपासना श्रेष्ठ है। गायत्री सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम मंत्र है।

इस साधना से सरल, स्वल्प श्रमसाध्य और शीघ्र फलदायिनी साधना दूसरी नहीं है। इसलिए समस्त धर्मग्रंथ व समस्त ऋषि-मुनि मुक्त कंठ से गायत्री का गुणगान करते हैं। सचमुच जिसने गायत्री को जान लिया, उसके लिए कुछ और जानना शेष ही नहीं रह जाता।

अस्तु हमें नित्य सत्-चित्-आनंदस्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमंडल में ध्यान करते हुए गायत्री मंत्र का जप पूर्ण श्रद्धा, विश्वास के साथ करते रहना चाहिए। ❑

संत जुनैद जिंदगी के अलग-अलग अनुभव प्राप्त करने के लिए वेश बदलकर घूमा करते थे। एक बार वे भिखारी बनकर एक नाई की दुकान पर पहुँच गए। वह नाई उस समय एक अमीर व्यक्ति की दाढ़ी बना रहा था, लेकिन भिखारी को देखकर उसने पहले इन्हीं की दाढ़ी बनाई। उसने जुनैद से पैसे भी नहीं लिए और अपनी क्षमता के मुताबिक भिक्षा भी दी। जुनैद नाई के व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने निश्चय किया कि उस दिन जो कुछ भी दान के रूप में प्राप्त होगा, उसे वे नाई को दे देंगे। संयोगवश एक अमीर व्यक्ति ने जुनैद को सोने के सिक्कों से भरी एक थैली दी। जुनैद थैली लेकर खुशी-खुशी नाई की दुकान पर पहुँचे और उसे वह देने लगे। एक भिखारी के हाथ में सोने से भरी थैली को देखकर नाई को आश्चर्य हुआ। वह यह भी नहीं समझ पा रहा था कि एक भिखारी उसे यह क्यों देना चाह रहा है ?

जब उसे पता लगा कि जुनैद उसे वह थैली क्यों दे रहे हैं, तो वह नाराज होकर बोला—"आखिर तुम किस तरह के भिखारी हो ? वेश तो तुम्हारा फकीरों जैसा है, मन से तुम व्यापारी हो। तुम मुझे मेरे प्रेम के बदले में यह पुरस्कार दे रहे हो ? प्रेम के बदले तो प्रेम दिया जाता है, कोई वस्तु नहीं।" यह सुनकर जुनैद भौंचक्के रह गए। उस नाई ने उन्हें एक बड़ी नसीहत दी थी, जिसे जुनैद ने हमेशा याद रखा।

पर्व विशेष–दीपावली पर्व

दीप पूजन का महापर्व

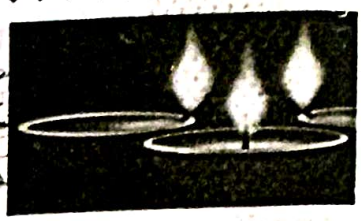

शरद ऋतु में कार्तिक अमावस्या की महानिशा में मनाया जाने वाला महापर्व है—दीपावली। आदिकाल से सुख–समृद्धि, प्रकाश–प्रसन्नता, उत्साह–उत्कर्ष का पर्याय रहा यह पर्व भारत की सांस्कृतिक आत्मा का मुकुटमणि है। भारतीय जीवन की लोक संस्कृति, धर्म–अध्यात्म के आदर्श तथा सामूहिक जीवन की खुशहाली के चारित्रिक मूल्यों से सुसज्जित दीपावली पर्व स्वयं में अनेक पर्वों को समाहित किए हुए महापर्व है।

यह प्रकाशपर्व कार्तिक कृष्ण रमा एकादशी से प्रारंभ हो गोवत्स द्वादशी, धन्वंतरि त्रयोदशी, नरक चतुर्दशी या काली चौदस व हनुमान जयंती, कमला जयंती एवं लक्ष्मीपूजन, अन्नकूट–गोवर्धन–विश्वकर्मा पूजन से लेकर यमद्वितीया—भाईदूज तक पूरे सप्ताह तक मनाया जाता है। संपूर्ण भारतवर्ष से लेकर यूके, यूएसए, ऑस्ट्रेलिया व अन्य कई देशों में इस पर्व की व्यापकता देखी जा सकती है। कुछ देशों में तो इस अवसर पर राष्ट्रीय अवकाश तक घोषित किया जाता है।

आधुनिकता की चादर में लिपटे नए समाज, नई पीढ़ी में इस महापर्व को मनाने का स्वरूप भले ही परिवर्तित होता नजर आता है, परंतु इसका महत्त्व प्राचीनकाल की ही भाँति अब भी समान रूप से जनसामान्य के जीवन में स्थान रखता है। लोग वर्ष भर इसका इंतजार करते हैं और इस अवसर पर घर, गली–कूचे, दुकान, कार्यालय सभी स्थानों की सफाई–सजावट कर इसका स्वागत करते हैं।

घर–परिवारों में नए सामान, कपड़े, आभूषण, साज–सज्जा, तोरण–मालाएँ, मिठाइयाँ–पकवान आदि के माध्यम से मुख्य पर्व को अत्यंत उत्साह से मनाने की परंपरा से सभी परिचित हैं। दीप, मोमबत्तियाँ जलाकर आतिशबाजी का दृश्य सर्वत्र देखा जा सकता है।

जहाँ भी समृद्धि–संपन्नता, संपत्ति–वैभव मौजूद है, वहाँ वह दृश्यमान हो उठता है, परंतु यह सब तो इस महापर्व का बाह्य कलेवर है, इसकी मूल प्रेरणा, महत्ता और संदेश बाह्य स्वरूप से कहीं ज्यादा जीवन के आंतरिक स्वरूप से संबंधित है। प्रकाश और ज्योति परमात्मा का स्वरूप है। इस रूप में परमात्मा की आराधना से जीवन में लौकिक व आध्यात्मिक—दोनों तरह से सुख, शांति और समृद्धि की प्राप्ति होती है। इसलिए शास्त्रों में ज्योति पुरुष भगवान की शक्ति को दीपक में विद्यमान मानते हुए, इसकी पूजा का विधान किया गया है।

दीपावली तो दीप पूजन का महापर्व है। इसकी आध्यात्मिक महत्ता अत्यधिक है। इस दिन साधना जगत् में परमात्मा की ज्योति को शक्ति रूप में धारण करने के लिए अनेक प्रकार की गुह्य साधनाओं, मांत्रिक, तांत्रिक एवं आध्यात्मिक प्रक्रियाओं–विधानों को संपन्न करने की सुदीर्घ परंपरा रही है।

सामान्य जीवन में दीपावली का पर्व जीवन के अभाव, अंधकार को दूर कर तमस् पर विजय प्राप्त करने तथा आनंद और प्रकाश को उपलब्ध करने का संदेश देता है। हमारे भीतर के प्रकाश और आनंद को बाधित करने वाली चीजें बाह्य नहीं, अपितु जीवन के भीतर ही हैं।

असंख्य कामनाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ, अहंकार, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, आलस्य, प्रमाद—ये सब मिलकर ही तो हमारी अंतश्चेतना पर प्रकाश-प्रसन्नता और आनंद की छाया तक नहीं पड़ने देते। आत्मज्योति से, प्रकाश से ये भीतर के सभी शत्रु पल भर में, तिरोहित हो जाते हैं। इन पर विजय के लिए ही यह प्रकाश पर्व रूपी दीपावली महोत्सव मनाया जाता है।

इस प्रकाशपर्व को मनाने की परंपरा अत्यंत प्राचीन होने के साथ-साथ विशिष्टतापूर्ण भी है। भारतवर्ष के इतिहास में प्रत्येक युग में इस प्रकाशोत्सव की महत्ता के आख्यान दिखाई पड़ते हैं। पौराणिक इतिहास ग्रंथों में महाराज पृथु द्वारा पृथ्वी दोहन कर देश को धन-धान्य से समृद्ध बना देने के उपलक्ष्य में दीपावली मनाने का उल्लेख है। ऐसा ही समुद्रमंथन से माता महालक्ष्मी जी के प्रकट होने के उल्लास को दीपोत्सव के रूप में अभिव्यक्त करने का तथा भगवान धन्वंतरि के प्राकट्य का भी वर्णन मिलता है।

यह भी दृष्टांत है कि रूप चतुर्दशी को भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नरकासुर का वध कर उसकी कैद से सोलह हजार राजकुमारियों को मुक्त कराने पर दूसरे दिन भगवान का अभिनंदन-स्वागत दीप मालाओं और साज-सज्जा से किया गया था। कुछ कथानकों में पांडवों के सकुशल वनवास से लौटने पर प्रजा द्वारा छोटे-छोटे दीपकों को जलाकर उनका स्वागत किया गया था, तभी से दीपोत्सव मनाया जाने लगा।

दीपावली के उपलक्ष्य में सर्वप्रसिद्ध आख्यान अधर्म पर धर्म की विजय स्थापित कर भगवान श्रीराम के अयोध्या लौटने पर प्रज्वलित दीपमालाओं से उनके स्वागत का है। इसी प्रकार इस महापर्व से जुड़ा एक कथानक यह भी है कि वामन रूप में भगवान विष्णु ने कार्तिक त्रयोदशी से अमावस्या तक इन तीन दिनों में दैत्य राजा बलि से दान में सर्वस्व प्राप्त कर उसे पाताललोक में जाने के लिए विवश कर दिया था।

इस अवसर पर राजा बलि ने भगवान के कहने पर जो वर माँगा था, वह यह कि 'जो मृत्यु के देवता यमराज के लिए दीपदान करेगा, उसे कभी यम की नारकीय यातनाएँ नहीं भोगनी पड़ेंगी और न कभी उसका घर-संसार लक्ष्मीविहीन रहेगा।' भगवान विष्णु ने राजा की यह कामना पूरी कर दी और तभी से यह दीपोत्सव मनाने की व यम देवता के लिए दीपदान करने की परंपरा अनवरत चली आ रही है।

सम्राट विक्रमादित्य के विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में नगरवासियों द्वारा दीपमालिकाओं से उनके अभिनंदन करने का दृष्टांत भी दीपावली से संबंधित है। ऐसे सैकड़ों आख्यान और कथानक इस महापर्व के संदर्भ में लोकसमाज में प्रचलित हैं। इन सबसे इस पर्व की महत्ता और व्यापकता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

योग, साधना, सिद्धि व अध्यात्म की दृष्टि से भी दीपावली महापर्व की गुह्यता एवं महत्ता सर्वोपरि है। आध्यात्मिक क्षेत्र में दीपावली की रात्रि का विशिष्ट साधनाओं के संपन्न करने का अत्यंत महत्त्व स्वीकार किया गया है। श्रीदुर्गासप्तशती में जिन तीन विशिष्ट रात्रियों का उल्लेख है, उनमें से एक दीपावली की अमावस्या रात्रि भी है। इसे मोहरात्रि कहा गया है तथा होली को कालरात्रि एवं शिवरात्रि को महारात्रि।

तंत्र एवं अध्यात्म सिद्धि के लिए तीनों को सर्वोत्तम माना जाता है। इनमें ब्रह्मांडीय गुप्त शक्तियाँ अत्यंत क्रियाशीलता को प्राप्त होती हैं, अत: साधक के विधि-विधानपूर्वक किए गए अल्प प्रयासों से

ही वे हस्तगत हो जाती हैं। इसी दिन नचिकेता ने धर्मराज यम से आत्मज्ञान की अंतिम वल्लि प्राप्त की थी, पतिव्रता सावित्री ने मनवांछित फल पाया था तथा भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्ति, इसी दिन हुई थी। आध्यात्मिकता का इस महापर्व से अति विशिष्ट संबंध है।

अध्यात्मवेत्ताओं की दृष्टि में दीपावली की रात्रि में प्रकृति के सूक्ष्मस्तर पर ब्रह्मांड की दिव्य शक्तिधाराएँ मुक्त रूप से पृथ्वीलोक पर प्रवाहित होती हैं। जो मर्मज्ञ इसकी साधना प्रक्रियाओं से परिचित होते हैं, वे महान उद्देश्यों के लिए इनकी प्राप्ति करते हैं। योग, तंत्र, मंत्र के साधक भी सिद्धि प्राप्ति में सफल हो जाते हैं, परंतु जनसामान्य के लिए उनके अनुरूप ही इस महापर्व की पूजा-आराधना का विधान प्रचलित है।

वैसे भी इस पर्व की आध्यात्मिकता की ओर विरले ही उन्मुख होते हैं, शेष जनसमाज तो प्रतीक, परंपराओं और कर्मकांडों तक ही पहुँच रखते हैं। लेकिन श्रद्धापूर्वक इन ज्ञात विधानों, दिव्य परंपराओं को भी क्रियान्वित किया जाए तो इनका सुफल भी सुख, समृद्धि, प्रसन्नता और खुशहाली देने वाला होता है।

माता लक्ष्मी का पूजन और भगवान गणेश की आराधना सभी विघ्नों को दूर कर जीवन में सुख-शांति और वैभव को प्रकट करने में सार्थक सिद्ध होते हैं, परंतु वर्तमान की आधुनिकता और घोर भोगवादी प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख समाज इस ज्योतिपर्व पर जलाए जाने वाले दीपों से कितना जीवन के अंधकार को दूर कर पाता है, यह प्रश्न कड़वा, लेकिन अत्यंत प्रासंगिक है।

यथार्थ में दीपावली का पर्व तो मानवीय अंतराल में छाए अंधकार, हताशा, निराशा, कुंठा के कुहासे को दूर कर जीवन को प्रकाश, ऊर्जा और उत्साह से भर लेने का महापर्व है। सद्ज्ञान, श्रद्धा, संवेदना के दीप भीतर जल उठें तो ही इस ज्योति पर्व की सार्थकता सिद्ध होती है। सच्चे अर्थों में भीतर के इन्हीं दीपों से जीवन प्रकाशित हो— यही संकल्प हम सबका होना चाहिए।

आस्था, विश्वास और श्रद्धा के दीपक हमारे सत्कर्मों, सच्चिंतन की सरसता में प्रज्वलित बने रहें, यही प्रयत्न और पुरुषार्थ हम सभी का हो। अमावस्या के गहन अंधकार-तमस् को तोड़ बाहर और भीतर ज्योतिपुंज जगमगा उठें—इष्ट के चरणों में यही प्रार्थना है। ❑

ब्रिटिश हुकूमत के दिनों की बात है। प्रसिद्ध न्यायाधीश डॉ० आशुतोष मुखर्जी सफर कर रहे थे। उन्होंने ट्रेन में अपने कंपार्टमेंट में घुसने के बाद, अपने जूते उतारकर रख दिए व सो गए। उनके सोते समय एक अँगरेज उसी कंपार्टमेंट में आया व एक हिंदुस्तानी को वहाँ सोते देख, बौखला उठा। उसने उनके जूते उठाकर बाहर फेंक दिए व खुद भी सो गया।

डॉ० मुखर्जी की नींद खुली तो उनके सहयात्री ने उन्हें सारी बात बताई। यह अँगरेज यात्री वहाँ अपना कोट उतारकर सो रहा था। डॉ० मुखर्जी ने उसका कोट उठाकर बाहर फेंक दिया। अँगरेज ने नींद खुलने पर डॉ० मुखर्जी से पूछा—''मेरा कोट कहाँ गया?'' डॉ० मुखर्जी बोले—''वह मेरे जूते लेने गया है।'' अँगरेज से कुछ कहते न बना।

सेवा परम धर्म है

लोक-कल्याण व लोकसेवा के लिए भगवान बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य कलंभन को भेजते समय उसे समझाते हुए कहा—"वत्स! संसार बड़ा दुःखी है। लोग अज्ञानतावश कुरीतियों, अंधविश्वासों में जकड़े हैं, जाओ तुम उन्हें जाग्रति का संदेश दो। इससे बढ़कर और कोई पुण्य नहीं कि तुम उन्हें आत्मकल्याण का मार्ग दिखाओ।"

कलंभन ने तथागत की चरणधूलि मस्तक से लगाई और वहाँ से विदा हुए। चलते-चलते शाम होने को थी। कलंभन एक गाँव में पहुँचे। उस गाँव में अनेकों लोग बीमार पड़े थे। वहाँ की स्त्रियाँ मलिन वेश में पुरुषों का सहयोग कर रही थीं। बच्चों के शरीर भूख से सूखे हुए से थे। लगता था, इन्हें न भरपेट भोजन मिलता है और न ही बीमारियों से मुक्ति के लिए औषधियाँ मिलती हैं। शिक्षा की दृष्टि से भी उनमें कोई चेतना दिखाई नहीं दे रही थी।

कलंभन को अपनी सेवा का स्थान मिल गया। एक झोंपड़ी के सहारे अपना सामान टिकाकर वे विश्राम की मुद्रा में बैठ गए और सारे गाँव में यह समाचार फैला दिया कि 'भगवान बुद्ध के शिष्य कलंभन तुम लोगों के दुःख दूर करने आए हैं, तुम लोगों को मुक्ति का मार्ग बताने पधारे हैं।' तुरंत ही जंगल में आग की तरह यह बात पूरे गाँव में फैल गई। ग्रामीणों के हर्ष का ठिकाना न रहा। सबने कलंभन के विश्राम के लिए एक सुंदर स्थान की व्यवस्था कर दी। रात बड़ी शांति और प्रसन्नता में बीती।

प्रातःकाल बौद्ध भिक्षु कलंभन जब अपना दैनिक प्रातःकालीन ध्यान-पूजा आदि संपन्न करने में लगे थे, तब तक कलंभन के कमरे के द्वार पर ग्रामवासियों की भीड़ जमा हो चुकी थी। कलंभन बाहर निकले, रूढ़िग्रस्त, अशिक्षा और दरिद्रता से ग्रसित चेहरे देख उनके मन में घृणा के भाव आ गए, पर उन्होंने उस समय कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की; आखिर वे वहाँ धर्मोपदेश के लिए आए थे। उन्होंने सबको सामने बैठाकर उपदेश प्रारंभ किया—"**धम्मं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।**" ग्रामीणजनों की समझ में न तो धर्म आया और न ही बुद्ध और संघ। वे ग्रामीण बेचारे जैसे आए थे, वैसे ही अपने घरों को लौट गए; क्योंकि वे तो इस उम्मीद में आए थे कि कोई उनके दुःख दूर करने आया है।

कलंभन ने एक नहीं शत-शत सभाएँ आयोजित कीं, परंतु ग्रामीण जनों की न तो निराशा दूर हुई और न ही दारिद्र्य। बेचारे धर्म को समझने की स्थिति में होते तो अपनी स्थिति आप न समझ लेते। कलंभन हताश हो तथागत के पास लौट आए और बोले—"भगवन्! सब कुछ निष्फल रहा। हमारा उपदेश लोगों के कुछ काम न आया। ग्रामीण जनों ने एक भी बात न तो सुनी और न ही समझी।"

तथागत कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उन्होंने आचार्य जीवन और शिष्य सनातन को बुलाकर कहा—"देखो तुम उस ग्राम में जाओ और उस गाँव के लोगों के लिए भोजन, औषधि और शिक्षा का प्रबंध करो।" तथागत की आज्ञा मानकर शिष्य सनातन और आचार्य जीवन वहाँ से चल पड़े। तब

कलंभन ने प्रश्न किया—''भगवन्! आपने इन्हें तो धर्म-उपदेश के लिए कहा ही नहीं।''

तथागत गंभीर हो गए और बोले—''समाज की मूलभूत व प्राथमिक आवश्यकताओं और सुधार की मूल-प्रक्रिया को अपनाए बिना धर्मोपदेश संभव नहीं। आज की आवश्यकता शिक्षा है, स्वास्थ्य है, कुरीतियों के जंजाल से मुक्ति है। अभी उन्हें जीवन की आशा चाहिए। वे आज जिएँगे तो कल धर्मोपदेश भी सुनेंगे।'' कलंभन यह सुनकर बड़ा संतुष्ट हुआ और धर्मोपदेश के स्थान पर समाजसेवा के कार्यों में जुट गया।

सचमुच जो लोग शिक्षा, स्वास्थ्य और रोटी जैसी जीवन की मूलभूत व प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं, भला वे धर्म को कैसे समझ पाएँगे? पहले हम उनकी मूलभूत प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति का मार्ग तो प्रशस्त कर दें, ताकि वे स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मन से धर्म को समझ सकें और उसे धारण कर सकें। तभी तो एक कृशकाय युवक को जो स्वामी विवेकानंद के पास धर्मोपदेश सुनने की आशा से आया था, उसे समझाते हुए उन्होंने कहा था—''जाओ पहले तुम फुटबॉल खेलो, ताकि तुम स्वस्थ शरीर व मन से गीता के ज्ञान को भली भाँति समझ सको।''

जब स्वामी विवेकानंद अमेरिका में धर्मोपदेश के लिए ठहरे थे, तब वहाँ के वैभव से भारत की गरीबी की तुलना करते हुए वे रात्रि भर रोते रहे। अपनी इसी पीड़ा को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—''अब हमारा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए 'दरिद्र देवो भव'—इस देश को उठने दो, गरीबों की झोंपड़ी से, मल्लाह की नौकाओं से, लोहार की भट्ठियों से, किसानों के खेत-खलिहानों से, मोचिओं की झोंपड़ी से, गिर-कंदराओं से; क्योंकि यह देश वहीं बसता है, उन्हीं में बसता है। गरीब को पहले रोटी दो, शिक्षा दो, औषधि दो तब उन्हें गीता सुनाओ। तब उन्हें धर्मोपदेश दो।''

स्वामी विवेकानंद द्वारा स्थापित मिशन शिक्षा, स्वास्थ्य, सेवा आदि कार्यों में प्रारंभ से ही प्राणपण से जुटा रहा है। गायत्री परिवार के संस्थापक-संरक्षक, गायत्री के सिद्ध साधक, युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी भी सेवाधर्म को सर्वोपरि मानते थे।

उनका अंत:करण मानवमात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। वे किशोरावस्था में भी अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता का शिक्षण देते थे।

जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर उसकी सेवा कर उन्होंने परिवार-समाज का विरोध तो मोल ले लिया, पर सेवा का व्रत नहीं तोड़ा। उन्होंने अपने सप्तसूत्री आंदोलन में साधना (धर्मोपदेश) के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य व स्वालंबन पर विशेष जोर दिया।

वे कहा करते थे 'जब भी प्रार्थना का समय आया, तब भगवान से हमने यही निवेदन किया कि हमें चैन नहीं वह करुणा चाहिए, जो पीड़ितों की व्यथा को अपनी व्यथा समझने की अनुभूति करा सके, हमें समृद्धि नहीं वह शक्ति चाहिए, जो आँखों से आँसू पोंछ सकने की अपनी सार्थकता सिद्ध कर सके।''

वे लिखते हैं कि 'हमारी कितनी रातें सिसकते बीती हैं, कितनी बार हम बालकों की तरह बिलख-बिलखकर, फूट-फूटकर रोए हैं, इसे

कोई कहाँ जानता है ? लोग हमें संत, सिद्ध, ज्ञानी मानते हैं, कोई लेखक, विद्वान, वक्ता, नेता समझते हैं, पर किसने हमारा अंत:करण खोल कर पढ़ा समझा है। कोई उसे देख सका होता तो उसे मानवीय व्यथा-वेदना की अनुभूतियों से, करुण कराह से हाहाकार करती एक उद्विग्न आत्मा भर इस हड्डियों के ढाँचे में बैठी-बिलखती ही दिखाई पड़ती।'

सचमुच गुरुवर की उन्हीं भाव संवेदनाओं से जन्मे गायत्री परिवार के अगणित संस्थानों, शक्तिपीठों के माध्यम से जनसेवा के कार्य अविराम चल रहे हैं, जो सराहनीय और अद्वितीय हैं।

सचमुच सेवा ही परम धर्म है। हम उन जनसेवा के कार्यों से जुड़कर सचमुच व्यक्ति समाज, राष्ट्र के साथ-साथ अपने कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त कर सकते हैं। ❑

एक राजा भगवान बुद्ध का बड़ा भक्त था। उसने सोचा कि प्रजा को सुखी रखना उसका कर्त्तव्य है, इसलिए उसने महल के द्वार पर स्वर्णमुद्राओं से भरे थाल रखवा दिए और घोषणा करवा दी कि प्रत्येक व्यक्ति दो-दो मुट्ठी मुद्राएँ ले जाए। यह सुनकर प्रजा में खुशी की लहर दौड़ गई। सब अपना-अपना काम छोड़कर राजमहल के द्वार पर जाकर मुद्राएँ लाने लगे। बुद्ध को यह बात पता लगी तो वे एक ब्रह्मचारी के वेश में वहाँ पहुँचे। उन्होंने दो मुट्ठी मुद्रा उठाईं और चल दिए। कुछ दूर जाने के बाद वे लौट आए और उन्होंने मुद्राएँ वहीं पटक दीं। राजा ने इसका कारण पूछा तो बोले—''सोचा शादी कर लूँ, पर इतनी मुद्राओं से कैसे काम चलेगा ?'' राजा बोला—''दो मुट्ठी और ले लो।'' बुद्ध ने चार मुट्ठी मुद्राएँ उठा लीं और चल दिए। थोड़ी देर बाद वे फिर लौट आए और बोले—''शादी करूँगा तो घर भी चाहिए।'' राजा बोला—''दो मुट्ठी और ले लो।'' बुद्ध मुद्राएँ लेकर चल दिए, मगर फिर लौट आए और बोले—''बच्चे भी तो होंगे, उनका भी तो खरचा होगा।'' राजा ने कहा—''दो मुट्ठी और ले लो।'' यह सुनकर बुद्ध अपने असली रूप में प्रकट हो गए। राजा ने उन्हें प्रणाम किया। बुद्ध राजा से बोले—''राजन्! दूसरों पर निर्भर रहने से कभी किसी का कल्याण नहीं होता। इस तरह तो प्रजा आलसी व कामचोर हो जाएगी। प्रजा को परिश्रम करके आजीविका पाने का रास्ता दिखाओ। तभी प्रजा का कल्याण होगा और वह सच्चे रूप में सुखी रहेगी।'' राजा को अपनी गलती का एहसास हो गया।

आदर्श सेवा

आत्मिक-उन्नति का सबसे सरल मार्ग सेवा बताया गया है, परंतु इस सेवा को जिन्होंने भी समझा, उनमें से कम ही हुए, जो इसके वास्तविक निहितार्थ को समझ पाए। सेवा किसकी? इतना बड़ा विश्व-परिवार है एक स्थान से शुरू करेंगे तो चलते-चलते कितने ही राहगीर मिल जाएँगे, जिन्हें हमारी सेवा की आवश्यकता हो। उन्हें कैसे बताएँ कि सीमित संसाधन हैं, कोई दूसरा उपाय नहीं तथा जीवन भी अल्प मात्रा में ही मिला है। उनकी सेवा का तो क्या होगा, पर अपना चित्त इस प्रकार हलका नहीं हो पाएगा।

सेवा वस्तुतः अंतर्जगत् की बात है, उसे पहचानना हो तो जरा यह देखिए कि किस प्रकार हमारा मन बाह्य विषयों में भटकते-भटकते किसी ऐसी चीज की तलाश किया करता है, जो उसको चाहिए तो सही, पर जिसे पाने में वह स्वयं को असमर्थ या यों कहें कि बेचैन अनुभव करता है। इसे कहते हैं आत्मा की प्यास जो तभी बुझाई जा सकती है, जब आपका मन पूर्ण शुद्ध हो गया हो, उसमें विकार की कोई जगह नहीं बची हो।

इसके बाद सेवा शुरू होती है, जो इतनी-सी है कि यदि आप शुद्ध मन से कोई एक काम भी बढ़िया और तन्मयतापूर्वक करते हैं तो आपका सेवा का प्रयोजन पूरा हो जाता है। जैसे किसी को पढ़ा लेना, किसी मरीज का इलाज करा देना, कोई नई पुस्तक खरीदकर उसे योग्य व्यक्ति तक पहुँचा देना, कोई नया नौकरी-व्यवसाय शुरू करना, जिसके द्वारा आप दूसरों के काम आ सकें आदि-आदि।

अब इसमें व्यवसाय की सेवा भी आ गई, जो आमतौर पर स्वयं के रोजगार तक ही देखी जाती है। सेवा करनी है तो पूर्ण तत्पर होइए किसी ऐसे काम को करने के लिए, जिसके द्वारा लोगों के जीवन में परिवर्तन आए, आशा एवं उमंग की किरणें फूटें। उसे ही सेवा का प्रयोजन कहते हैं, अब ऐसी सेवा तो गली-मुहल्ले, शहर की सड़कों पर, दूर किसी स्थान पर या किसी अनजान कोने में बिना किसी संकोच के की जा सकती है।

उसे सेवा कहते हैं, प्रश्न उठता है कि उसे क्यों करते हैं तो उसका उत्तर यह है कि ताकि आपकी आत्मा को शांति मिल सके, उसे भव-बंधनों से छूटने का मार्ग प्राप्त हो तथा वह किसी भी प्रकार शोक-ग्रस्त एवं व्याधि-व्यापार में न लगे, यही सेवा है।

अब किसी उत्कृष्ट प्रयोजन के लिए सेवा अपनाई जाए तो इतना ही समझिएगा कि सेवा अपनी आत्मा की होती है, दूसरे से उसका उतना ही संबंध है जितने में कि वह व्यक्ति, वह समुदाय, वह व्यवस्था आपकी सेवा का लाभ स्वयं को ऊँचा उठाने एवं निश्चिंतता प्राप्त करने में ले सके।

इसे ही सेवा कहते हैं, जो हर प्रकार से बिना किसी अवसर को देखे की जा सकती है तथा जीवन के यथार्थ-पथ से जिसका सीधा संबंध है। इस सेवा को करने के लिए हर मनुष्य को स्वयं को समर्थ-सक्षम बनाना पड़ता है, ताकि वह दूसरों के, समाज के कुछ काम आ सके।

यह समर्थता आपकी व्यक्तिगत प्रतिभा पर निर्भर है, तथा इसे देश-काल-परिस्थिति अनुरूप आपको ही निभाना है। इसके लिए तय करिए कि

आगे आने वाले वर्षों में किस वर्ष को किस प्रयोजन के लिए समर्पित करेंगे। इतना सुनिश्चित करने के बाद यह तय करना होता है कि आदर्श सेवा कैसे करें।

जिसकी सेवा करनी है उसका तो पता है कि वह मिलने वाला सेवा से ही है, फिर बात आती है कि यदि सेवा ही सब कुछ है तो क्यों न वर्ग-विभाजन किया जाए। एक कार्य को एक समय पर निष्ठापूर्वक निभाएँगे तथा शेष कर्त्तव्य उसके अगले स्थान कर समर्पित कर दिए जाएँगे। जीवन का एक पूरा नक्शा बना लेना ठीक है कि हमें इस मार्ग से चलना है, ये-ये हमारे कदम होंगे, ऐसी क्रिया अपनानी होगी।

इसके साथ यह भी देखना चाहिए कि सेवा हुई भी कि नहीं। आज का कार्य कल पर तो नहीं छूटा? कैसी तत्परता हो, समय पूर्व सब कार्य कैसे पूरे हो जाएँ यही सेवा का विषय है। इस मानसिकता के साथ व्यक्ति चलता है तो यथार्थ में सेवा होनी संभव है।

क्या ऐसा जीवन अधिक सफल नहीं होता जो पहले से ही निर्धारित कर ले कि हमें चलना किधर है। कैसे पहुँचेंगे अपने गंतव्य तक? कौन होगा वहाँ आदि-आदि। ये प्रश्न पूर्वनियोजित होने चाहिए, ताकि सेवा का उद्देश्य भी पूरा हो सके और स्वयं को सुधारने की ललक भी बनी रहे, जो कि सेवा के मूल में एक आवश्यक तत्त्व है। सेवा के द्वारा निश्चित ही परमात्मा को प्राप्त किया जाता है, परंतु कैसे? उत्कृष्ट सेवा से, सफल सेवा से, आनंद से की गई सेवा से और दूसरों के उत्थान में नियोजित सेवा से।

ऐसी सेवा करिए कि समाज स्मरण रखे, ऐसे बनिए कि सारा विश्व आपके दिए हुए प्रकाश से आलोकित हो सके, सभी के हित में आपके प्रयोजन हों तथा सेवा का महान लक्ष्य आत्मोत्सर्ग निश्चित ही प्राप्त हो सके। यही सेवा का सुफल है। अब ऐसी सेवा करने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, जो है उसी से शुरू कर दीजिए। जैसे विद्या है तो उसे बाँट दीजिए, पैसा है तो सही जगह लगा दीजिए, प्रभाव और प्रतिष्ठा है तो उसे नियोजित करिए सत्कार्य के प्रति और कुछ भी नहीं है तो एक काम कर लीजिए, अपने आप को सेवा के लायक बनाने का प्रयत्न कीजिए।

दिन-रात यही उमंग उठती रहे कि सेवा तो करेंगे हम अपनी आत्मा की, परंतु करेंगे कैसे? स्वयं को बनाकर। वो कैसे होता है? जब चिंतन चलने लगे तो उसे रोकिए मत देखिए कि क्या संभावना है आपके अंतर्मन में स्वयं के समाधान तक पहुँचने की। जो स्वयं का समाधान कर ले, उसे ही सेवा बोलते हैं। ऐसी सेवा जिस आत्मा की की जानी है, उसका आदेश मानिए और तत्पर हो जाइए उत्कृष्ट सेवा करने के लिए।

सुअवसरों की उपेक्षा करना एक प्रकार से स्वयं अपनाया गया अभिशाप है।

—अ० ज्यो० 1976, जुलाई, पृ० 50

आपके मन में जो भी विचार हैं, उन्हें एक किनारे कर दीजिए, फिर जो उत्कृष्ट उमंग उठे उसे अपना लीजिए और तत्परतापूर्वक अपना कार्य करते जाइए, यही सेवा है। जो एक क्षण भी न रुके उसे सेवा कहते हैं और वह ऐसी चीज नहीं, जो मुफ्त में मिल जाए। उसे करने हेतु बड़ा प्रचंड पुरुषार्थ करना पड़ता है।

देखिए कि कैसे निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने में आपके संसाधन कार्य कर सकते हैं, कैसे वह मनोभूमि बने जो आदर्श एवं उत्कृष्ट कहलाए। ऐसी सच्ची सेवा की आकांक्षा जीवन-देवता आपसे करता है, आप उसे करके दिखाइए और निश्चित ही आत्मलाभ को प्राप्त करिए। ❑

विपत्ति में धैर्य एवं साहस का अवलंबन

द्वंद्व मनुष्य जीवन का स्वाभाविक अंग है, जैसे कि दिन और रात। दोनों से मिलकर ही जीवन बनता है। सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि के दो विरोधाभासी पक्षों से मिलकर ही यह जीवन बनता है और संसार का व्यापार चलता है।

इसी पल न जाने कितने लोग द्वंद्वजन्य अनुभवों से गुजर रहे होंगे—कुछ सुख व हर्ष की खुमारी में डूबे, आनंद के सागर में गोते लगाते हुए, तो कुछ दुःख व शोक के तमस् में डूबे, कष्ट और पीड़ा के विकट पलों में तड़पते-कसमसाते हुए और यह सब सदैव भी नहीं रहता, इनकी उपस्थिति सामयिक ही रहती है।

ये जीवन में कुछ ऐसे ही आते-जाते रहते हैं, जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन। दोनों से मिलकर ही जीवन की समग्र पटकथा तैयार होती है। सामान्यतया अनुकूल परिस्थितियों में तो सभी प्रफुल्ल दिखते हैं, लेकिन विषम परिस्थिति में घबरा जाते हैं, अपना संतुलन खो बैठते हैं और चिंता व तनाव से भर जाते हैं। इन परिस्थितियों के बीच मानसिक स्थिरता व संतुलन को बनाए रखना वस्तुतः साहस एवं सूझ की माँग करता है, जिसे हर व्यक्ति प्रारंभ में नहीं साध पाता।

बारंबार इनका सामना करने पर व्यक्ति इनके बीच जीना सीख जाता है और अपने जीवन की समर्थ भाषा के साथ दूसरों को भी इसकी कला का प्रशिक्षण दे पाता है कि दुःख और प्रतिकूलता को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए आगे बढ़ते रहना ही जीवन है। जीवन के थोड़े-से दुःख, कष्ट और असफलता का सामना होने पर घबरा जाना, संघर्ष में अपनी हिम्मत खो बैठना दुर्बलता और कायरता के चिह्न हैं।

दुःख, प्रतिकूलता एवं असफलता के अनवरत थपेड़ों के बीच व्यक्ति का निराश एवं हताश होना, अवसादरूपी मनोदशा से घिर जाना, आत्महत्या तक की बात सोचना आरंभ करना, कर देना स्वाभाविक है, लेकिन इस मनोदशा में किसी तरह का समाधान नहीं निकलता, बल्कि व्यक्ति और गहरे अंधकार से घिर जाता है।

इससे उबरना और विजयी होना ही एक सफल-सार्थक मानव जीवन की निशानी है और प्रकाश की किरण इन्हीं अंधकार के गहनतम पलों के मध्य ही कौंधती है, जो जीवन के गहनतम अंधकार को पल भर में दूर कर देती है। आशा, उत्साह से लबरेज और जीवट के धनी व्यक्ति के सामने निराशा का अंधकार अधिक देर तक नहीं ठहर पाता। इनका अस्तित्व सामयिक और क्षणिक ही रहता है।

जैसे घुप अँधेरी रात के बाद सुबह का उजाला दिन को रोशन करता है, कुछ ऐसे ही जीवन की घुप अंधकार भरी रात्रि के बाद काला साया स्वयं छँटते जाता है और जीवन में चहुँदिशाओं से आशा की नई किरणें फूटती हैं एवं नया जीवन लहलहाने लगता है और फिर संसार में ऐसा कौन मनुष्य है, जिसने दुःख नहीं झेला, जिस पर मुसीबत नहीं आई। सामान्य इनसान की तरह अवतारी पुरुषों तक के जीवन दुःख व कष्ट की अनगिनत अग्नि-परीक्षाओं से होकर गुजरे।

भगवान राम का चौदह वर्ष का वनवास, पग-पग पर कष्ट, अभाव एवं चुनौतियों से भरा रहा,

लेकिन उन्होंने इसे सहर्ष अंगीकार किया है और इसकी अग्नि परीक्षा में कुंदन की भाँति चमककर सामने आए तथा रावण के आसुरी आतंक का विनाश किया और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में रामायण की कालजयी प्रेरक कथा-गाथा को विरासत में दे गए।

पांडवों का वनवास ही उन्हें महाभारत के युद्ध के लिए तैयार कर सका। भगवान श्रीकृष्ण का आसुरी शक्तियों के साथ जीवनपर्यंत का संघर्ष ही उन्हें पूर्णपुरुष के आदर्श के रूप में स्थापित कर पाया। साथ ही अर्जुन के साथ उनका संवाद, श्रीमद्भगवद्गीता के अमर संदेश के रूप में मानवता के लिए वरदान बनकर सामने आया।

इस तरह दुःख, कष्ट एवं प्रतिकूलता जहाँ एक कमजोर व्यक्ति के लिए मृत्यु, काल एवं विनाशक घटना के रूप में भासती है तो वहीं एक आस्तिक, तपस्वी एवं आशावादी व्यक्ति के लिए ये ही किसी वरदान से कम साबित नहीं होते। इन्हीं के मध्य उनकी ईश्वरप्रदत्त क्षमताएँ, जो सामान्यतया प्रसुप्त रहती हैं, वे प्रतिकूलता की चिनगारी के साथ धधक उठती हैं और आत्मबोध से लेकर तत्त्वबोध का वरदान देकर उसे सामान्य इनसान से महामानव, देवमानव की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देती हैं।

आश्चर्य नहीं कि इनके संघर्ष, विजय एवं सफलता की कालजयी गाथाएँ फिर प्रकाशस्तंभ की भाँति पीढ़ियों के जीवन का पथ आलोकित करती हैं और यह सब किन्हीं गिने-चुने व्यक्तियों की नहीं, बल्कि हर जीवट से भरे इनसान की जीवन गाथा है क्योंकि मनुष्य बना ही उस मिट्टी का है, जिसके सामने हर दुःख छोटा पड़ता है, हर मुसीबत आसान हो जाती है, कोई भी विरोध उसके समक्ष टिक नहीं सकता; क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य को अपनी प्रतिकृति के रूप में विशिष्ट क्षमताओं से संपन्न करके भेजा है, जिसे ऋषियों ने **'अमृतस्य पुत्रः'** कहकर भी संबोधित किया।

अमृत पुत्र के रूप में, अमरतत्त्व का अधिकारी होने के नाते, मनुष्य असीम शक्तियों का अक्षय भंडार है। बस, इस पर विश्वास करने भर की देर है। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' के रूप में ईश्वरीय शक्तियाँ व उसकी अजस्र कृपा हर पल उसके पीछे सहयोग के लिए खड़ी हैं। इतिहास साक्षी है कि सृजन की अंतर्निहित अनंत शक्ति के बल पर ही मनुष्य ने सदैव ही दीनता, हीनता, असफलता, निर्धनता, विवशता, महामारी, अकाल, भूख, पीड़ा एवं यहाँ तक कि मृत्यु तक पर विजय प्राप्त की है।

मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की गाथा वास्तव में उसके इसी जीवट, आशा, उत्साह, साहस, धैर्य एवं दैवी संभावनाओं के मूर्त होने की कहानी बयाँ करती है और इसमें यदि कहीं कोई चूक रह जाती है, तो यह एक ही बात को सिद्ध करती है कि सफलता के लिए पूर्ण प्रयास नहीं हुआ। जबकि परमात्मा की कृपा प्रतिपल हर साहसी, ईमानदार, जिम्मेदार एवं धैर्यवान व्यक्ति के साथ खड़ी रहती है। विश्वास करें कि जीवन की बड़ी-से-बड़ी आपत्ति, दुर्घटना, शोक एवं हानि मनुष्य को निखारने के लिए आती है।

वे उसके आत्मतत्त्व की अग्नि परीक्षाएँ हैं, जिनसे तपकर उसे कुंदन बन बाहर निकलना है। अतः हर विषम परिस्थिति में शक्ति, सामर्थ्य एवं ज्ञान के स्रोत परमात्मा को सदैव स्मरण रखें, अपने आत्मविश्वास की ज्योति जलाए रखें। ईश्वर ने आपको धरती पर विशिष्ट कार्य के लिए भेजा है, आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के लिए भेजा है। वर्तमान विषम परिस्थितियाँ उसी का एक अनमोल अवसर हैं। ईश्वर का सारा बल आपकी आत्मा में निहित है। अतः हताशा, निराशा एवं नकारात्मक चिंतन को छोड़कर धैर्य, पुरुषार्थ एवं साहस का अवलंबन लें। अपने इष्ट का सुमिरन करते हुए, अपने कर्त्तव्य कर्म में जुटे रहें, तब जीवन एक सार्थकता के बोध के साथ दमकता है। ❑

समस्त दुःखों को हरता है योग

जीवन की जितनी भी कठिनाई है, जो भी कुछ उसमें हमें आकंठित करता है, उसका समाधान है योग। योग वह बीज-तत्त्व है, जो एक बार यदि हमारे हृदय में सक्रिय हो जाए तो जीवन का पूरा स्वरूप ही परिवर्तित हो जाता है। इस योग के द्वारा ही जीवन समग्र रूप से परिष्कार के पथ पर बढ़ चलता है। हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकता है कि हम सभी प्रकार की विषय-वासनाओं से परे एकत्व में स्थापित हों तथा हमारा क्रियाकलाप आत्मा की गुणवत्ता को पदार्पित करे।

जो यह समझ गया कि मेरे भीतर हर प्रकार की कष्ट-कठिनाई से लड़ने की सामर्थ्य विद्यमान है तथा मुझे एकमात्र उस ईश्वर को स्मरण रखना चाहिए जिसके द्वारा जीवन अपनी उज्ज्वल संभावना को प्राप्त करता हो, उसे ही आत्मा की महान संपदा का भान प्राप्त होता है तथा उसका जीवन सुख-शांतिपूर्ण व्यतीत होने लगता है। हम ऐसे बनें कि हमारा जीवन सदा उस प्रकाश को उत्सर्जित करे, जिसके द्वारा मनुष्य की आत्मा अपने दिव्योत्कर्ष को प्राप्त करती है।

जब तक हममें आसक्ति-विकार हैं, हम जीवन के यथार्थ स्वरूप को देख नहीं पाते तथा हमारी आत्मा कुंठित पड़ी इस संसार की ही क्रियाप्रणाली में व्यस्त रहती है, तब तक मनुष्य का विकास संभव नहीं। उसे जागना है तो अपने भीतर से उस शक्ति को उजागर करना होगा, जिससे कि जीवन का समग्र कल्याण हो सके। मनुष्य की आत्मा चाहती है कि वह बंधनों में न रहे, उसे पीड़ा-विछोह का सामना न करना पड़े तथा वह हर प्रकार से उन्नत होती जाए।

उसकी इसी कामना को पूरा करने प्रत्येक जागरूक हृदय कदम बढ़ाता है तथा ईश्वर को अपने में धारण कर सदा एकरस अपने उज्ज्वल स्रोत से मिलने को तत्पर हो जाता है। जब तक हम इस संसार में ही रमण करेंगे—हमारी आत्मा पूर्ण परिष्कृत नहीं हो पाएगी। उसे यदि अपने भाग्योदय की दिशा में बढ़ना है तो सर्वप्रथम अपने में उस शक्ति को धारण करना होगा, जो कि यथार्थ में हमारा पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ हो। उसे ही योग की आधारशिला कहते हैं। जिसके पास यह है, वह इस संसार के माया-मोह के मध्य कभी विचलित नहीं हो सकता है, उसकी आत्मा कहेगी कि मैं जिस कार्य के लिए बनी हूँ, वह तभी संभव है, जब मेरा एकाधिकार अपनी वृत्तियों पर हो।

सभी प्रकार की कष्ट-बाधाओं से परे मुझे अपने उज्ज्वल स्रोत से मिलना है, इसलिए मैं किसी भी प्रकार इस संसार के बंधन को स्वीकार नहीं सकती। मुझे तो एकमात्र उस ईश्वर की सेवा द्वारा अपना दिव्य क्रियाकलाप पूरा करना है। यदि मैं भटक गई तो उस महान सौभाग्य से वंचित रह जाऊँगी, जिसे प्राप्त करने के लिए मेरे कदम उठने चाहिए। जिस मनुष्य के भीतर आत्मा के पुकार की ऐसी तड़प जाग उठी कि उसे तो मात्र ईश्वर की सेवा में अपना जीवन समर्पित करना है, वह कभी भी भ्रमजाल में नहीं रह सकता है।

योग का भी उद्भव केंद्र यही है कि हमने उसे पहचान लिया जो कि सभी क्षुधाओं का अंत है, जिसके बाद पाने को कुछ रह नहीं जाता तथा इस संसार के कल्याण में ही अपनी दृष्टि जा लगती है।

ऐसी कृपा उसी के साथ होगी, जो हर प्रकार के दुख-द्वंद्व से परे ईश्वर के साहचर्य में रहना जानता हो। जब तक ईश्वर हमारे साथ हैं, तब तक किसी प्रकार की पीड़ा-आसक्ति का हमारे जीवन में स्थान नहीं हो सकता है।

ईश्वर वह शक्ति है, जो सदैव हमें जगाए रखे, जिसकी कृपा से मनुष्य अपने दैवी उत्तराधिकार की प्राप्ति किया करता है। हम उस ईश्वर से एकरूप बनें, यही योग-साधना है तथा इसके द्वारा जीवन में दुःखों का अंत संभव है। जिसने अपने भीतर झाँकना सीख लिया, उसके कदम योग के पदचिह्नों पर बढ़ चलते हैं।

योग ही वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य हर प्रकार की कठिनाई से पार पाने में समर्थ होता है। उसकी आत्मा सदा प्रकाशित रहकर उसे अपने दैवी स्वरूप की प्राप्ति कराती है। उसका जीवन विषयों से इतर आत्मा की प्रेरणा से चलने लगता है तथा ऐसा मनुष्य सच में धन्य है, जिसने अपने भीतर छिपी संभावना को उजागर कर लिया हो। योग यही अवसर हमें प्रदान करता है तथा इसके द्वारा मनुष्य की आत्मा कल्याण को प्राप्त करती है।

एक बार यदि योग सध जाए तो इसका परिणाम जीवन में चमत्कारिक रीति-नीति से होने लगता है। हमारा जीवन पूर्ण परिवर्तित हो जाएगा यदि हम योग को समझ लें तो। इसके उपरांत ही हमें दुःखमुक्त होने का अवसर मिल पाता है तथा हम स्वयं को सदा निश्चिंत तथा प्रेरणा के वशी पाते हैं। यही योग का विज्ञान है। ❑

एक शिष्य ने आत्मज्ञान का शिक्षण लिया। वह अपने गुरु से बोला—"एकांत में बैठकर आत्मचिंतन करने में जो आनंद है, वह कहीं और नहीं। हे गुरुवर! मैं उच्चस्तरीय साधना हेतु हिमालय जाना चाहता हूँ।"

गुरु बोले—"जिस राष्ट्र के नागरिक भटक रहे हों, वहाँ के प्रबुद्ध व्यक्ति मात्र अपने कल्याण की, स्वार्थ की बातें सोचें यह अनैतिक है। ईश्वर को पाना है तो प्रकाश की साधना करो। जो अंधकार में भटक गए हैं, उन्हें ज्ञान का प्रकाश दो। चारों ओर अर्जित संपदा बिखेर दो।" शिष्य मानवता के देवदूत के रूप में अग्रगामियों की टोली में सम्मिलित हो गया।

कुंठा से कुछ ऐसे उबरें

कुंठा आंतरिक घुटन, बेचैनी, झुँझलाहट एवं हताशा-निराशा भरी ऐसी नकारात्मक भावदशा है, जहाँ व्यक्ति की इच्छाएँ पूरी न हो पा रही हों या इनमें व्यवधान पहुँच रहा हो। अधूरे लक्ष्य, अप्रत्याशित अवरोध या गलतफहमियों के चलते, एक ऐसी स्थिति बन जाती है, जब हमारी आशा-अपेक्षाएँ यथार्थ से मेल नहीं खा पातीं। इसके अतिरिक्त कार्यस्थल का तनाव, संबंधों की खटास, बिगड़ा स्वास्थ्य और यहाँ तक कि दैनिक जीवन के गिले-शिकवे एवं असुविधाएँ इनको उत्प्रेरित करते हैं।

कुंठा दीर्घकालीन तनाव के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया की स्थिति है, जब व्यक्ति चुनौतियों का सामना करने में असक्षम एवं असहाय अनुभव करता है। अधूरी आशा-अपेक्षाएँ एवं लक्ष्य की पूर्ति न हो पाने को इनका प्रधान कारण समझा जा सकता है। व्यक्ति का लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में वांछित प्रगति का न हो पाना, कार्यस्थल में दबाव व तनाव की स्थिति और आर्थिक तंगी आदि कुंठा का भाव जगाते हैं। स्वास्थ्य संबंधी असाध्य स्थिति कुंठा को जन्म दे सकती है।

अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते कदमों में आने वाले अवरोध एवं चुनौतियाँ कुंठा का कारण बनती हैं। अप्रत्याशित घटनाएँ, प्रतिकूल परिस्थितियाँ व्यक्ति को तय मंजिल की ओर बढ़ने से रोकती हैं। हाथ में लिए गए कार्य का अत्यधिक कठिन होना व इसका समयसाध्य एवं चुनौतीपूर्ण स्वरूप कुंठा के भाव को जगा सकता है। फिर आपसी कलह, मनमुटाव, संबंधों में खट-पट तथा आपसी संवाद का अभाव कुंठा को बढ़ाने के कारण बनते हैं।

इसके साथ अन्य वैयक्तिक एवं बाह्य कारक भी विचारणीय हैं। परिवेश, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की तनावपूर्ण घटनाएँ एवं परिदृश्य भी तनाव की स्थिति में लाकर व्यक्ति को कुंठित कर सकते हैं, जिनमें रहने के लिए व्यक्ति विवश-बाध्य अनुभव करता हो। इसमें प्रतिकूल एवं विषम वातावरण की अहम भूमिका रहती है। दीर्घकालिक तनाव एवं अनसुलझे मुद्दे इसको हवा देते हैं।

व्यक्ति के मानसिक एवं भावनात्मक कारक कुंठा के मूल में सक्रिय रहते हैं। उद्विग्नता एवं अवसाद, नियंत्रण के बाहर की स्थितियाँ, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना, परिस्थितियों पर नियंत्रण का अभाव एवं अपेक्षित योग्यता, कौशल एवं आत्मविश्वास का न होना, ये सब कुंठाभरी मनःस्थिति का निर्माण करते हैं।

कुंठा के स्वरूप व कारण के साथ यह जानना आवश्यक है कि कुंठा एक सामान्य मानवीय भाव है और उचित उपायों के साथ इसका समाधान किया जा सकता है। समाधान के रूप में सर्वप्रथम अपने कुंठा के भाव को स्वीकार करें, इसको अनुभव करें व इसको दमित न करें। आत्म स्वीकृति के साथ इसके उपचार के द्वार खुलेंगे। अपनी भावनाओं को दबाएँ नहीं। स्वयं के प्रति उदारता अपनाएँ, स्व-करुणा का अभ्यास करें। मानकर चलें कि सभी किसी-न-किसी स्तर व स्थिति में कुंठा का अनुभव करते हैं, आप अपवाद नहीं हैं व इसका उपचार आपके हाथ में है। आपके जागने भर की देर है।

तात्कालिक राहत के तौर पर, कार्य या उस स्थिति से क्षणिक विराम लें, जहाँ आप कुंठित अनुभव कर रहे हों। गहरा श्वास लें, आपको जो अच्छा लगता है, उसे करें। विश्रांति की तकनीकों को अपनाएँ, शिथिलीकरण का अभ्यास करें, संभव हो तो ध्यान का प्रयोग कर सकते हैं। समस्या के मूल तक पहुँचने व इसके समाधान के लिए कुंठा के मूल कारणों को पहचानें।

किन परिस्थितियों में, क्या चीजें आपके कुंठा के भाव को जगाती हैं—उनको पहचानें। स्वाध्याय एवं सत्संग इसमें बहुत सहायक आध्यात्मिक उपचार हैं। इनके प्रकाश में गहनतम स्तर पर स्वयं का अध्ययन अवलोकन संभव हो पाता है और समस्या के मूल तक पहुँचने की सूझ विकसित होती है। इस सबके बाद ही पूरी तैयारी के साथ कुंठा का सामना करने की स्थिति बनती है।

अपने विश्वसनीय मित्र या स्वजन से इस पर चर्चा करें, समस्या को कागज पर लिखें, एक डायरी बनाएँ और साथ ही अपनी सीमा को पहचानें, वे चीजें जो आपके नियंत्रण के बाहर हैं, उन पर अधिक ध्यान न दें, बल्कि उन पर ध्यान केंद्रित करें, जिन्हें आप परिवर्तित कर सकते हैं। साथ ही ईश्वर पर विश्वास करें कि जो आपके लिए हितकर है वह सब घटित हो रहा है। यदि परिणाम आपके पक्ष में नहीं दिखते तो हो सकता है कि अभी उसका उपयुक्त समय नहीं है। उचित समय पर सब घटित होगा, बस, इंतजार करें और अपने ईमानदार प्रयास में लगे रहें।

कुंठा से निपटने की दीर्घकालीन रणनीतियों के अंतर्गत, अपनी जीवनशैली पर कार्य कर सकते हैं। नित्य व्यायाम करें, शारीरिक गतिविधियों को जीवन में स्थान दें। इसके साथ एंडोर्फिन हॉर्मोन स्रावित होता है, जो कुंठा को बढ़ाने वाले तनाव को कम करता है।

इसके साथ पर्याप्त नींद लें, समुचित विश्राम करें। वर्तमान में ध्यान केंद्रित रखें और अपने कर्त्तव्य कर्म में व्यस्त रहें। स्वस्थ जीवनशैली आपको तन-मन से सशक्त कर जीवन की चुनौतियों से जूझने की सामर्थ्य देगी, इसके प्रति जागरूक रहें। इसके साथ जीवन से अपनी आशा-अपेक्षाओं को व्यावहारिक बनाएँ, जो कि आपके लिए प्राप्य हों।

बड़े लक्ष्य को छोटे-छोटे खंडों में तोड़ें। परिस्थिति के पीछे के सकारात्मक पहलू को देखने का प्रयास करें, हर घटना से आवश्यक सीख लें व आगे बढ़ें। दूसरों के प्रति कृतज्ञता का अभ्यास करें। अमुक व्यक्ति ने आपके साथ जो उपकार किए हैं, उनको याद करें। दूसरों के साथ अनावश्यक तुलना-कटाक्ष में न उलझें। ऐसे लोगों व परिस्थितियों से बचें, जो कुंठा के भाव को जगाते हों व इसे और

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थात मनुष्य को स्वयं अपने द्वारा ही अपना उद्धार करना चाहिए और स्वयं को पतन की ओर नहीं ले जाना चाहिए। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही शत्रु।

तीव्र करते हों। कुछ समय प्रकृति की गोद में बिताना भी एक कारगर उपाय रहता है।

इस तरह कुंठा एक नकारात्मक भावना है, जो व्यक्ति को हताशा-निराशा के गहरे भँवर में उलझा देती है। व्यक्ति जहाँ अनचाहे एवं अवांछनीय विचार-भावों के मकड़जाल में कुढ़ता रहता है। इसके स्वरूप को समझकर व्यक्ति इससे बाहर निकल सकता है। जैसे एक मकड़ी अपने बुने जाले को समेटकर इससे बाहर निकल जाती है, वैसे ही व्यक्ति ऊपर बताए सूत्रों के अभ्यास के साथ कुंठा के भँवर से उबर सकता है और सकारात्मक सोच का वरण करते हुए आशा-उत्साह से भरा एक सफल एवं खुशहाल जीवन जी सकता है। ❑

कठिनाइयाँ कमजोरी नहीं, कंठहार हैं

चीन के महान दार्शनिक महात्मा कन्फ्यूशियस जनसेवा के कार्य में प्राणपण से लगे रहते थे और कभी भी किसी से निजी सुख-सुविधा की आकांक्षा नहीं करते थे। जनसेवी महात्मा कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी जनकल्याण के लिए देश-देश, गाँव-गाँव तथा गली-गली लोगों को धर्म और मानवता का संदेश सुनाते रहे थे।

कई राजाओं ने उनसे धन, ऐश्वर्य, राजकीय सुख-सुविधा ग्रहण करने का आग्रह किया, पर उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। एक बार भूख से व्याकुल उनके अनेक अनुयायियों ने प्रार्थना की कि इस प्रकार कष्ट-कठिनाइयों से भरा जीवन जीने से अच्छा है कि हम सब किसी राज्य से अपने लिए सुख-सुविधा ग्रहण करने का आग्रह स्वीकार कर लें।

इस पर आचार्य कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया कि श्रेष्ठ और पुरुषार्थी पुरुष सदैव ही अपने हाथ से उपार्जित धन ही काम में लाते हैं। कठिन कठिनाइयाँ श्रेष्ठ पुरुषों का कंठहार हैं; जिनके कारण ही वे पहचाने जाते हैं। जो कठिनाई को वरण नहीं कर सकता, कष्टों को सहन नहीं कर सकता और विषम परिस्थितियों में भी प्रसन्न नहीं रह सकता, वह कभी श्रेष्ठ पुरुष नहीं बन सकता और न कोई श्रेयस्कर कार्य ही कर सकता है।

महात्मा कन्फ्यूशियस जहाँ एक दार्शनिक और आध्यात्मिक व्यक्ति होने के नाते विरक्त भाव से ही रहते थे, वहीं समाज में फैली बुराइयों और भ्रष्ट परंपराओं के प्रति उदासीन भी नहीं होते थे।

वे जहाँ भी अहितकर प्रवृत्तियों को चलता देखते थे, वहीं पहुँच जाते थे और सुधार का प्रयत्न किया करते थे। उन्होंने साधु-संन्यासियों की धर्म-संस्थाओं का अध्ययन किया और पाया कि धर्म प्रचार करने वाले लोग प्रारंभ में तो साहसपूर्वक ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेते हैं, पर बाद में वे उसका पालन नहीं कर पाते और शीघ्र ही विकारों और परिस्थितियों का शिकार बनकर व्रत-भंग के दोषी बन जाते हैं और अपने आचरण से धर्म के प्रति जन-आस्था की हानि करते हैं।

कन्फ्यूशियस ने इसलिए धर्म प्रचार और जनसेवा से जुड़े लोगों के लिए व्यक्तिगत जीवन की शुचिता, पवित्रता को आवश्यक बताया। उन्होंने धर्म की आड़ में व्यभिचार को धर्म के लिए हानिकर बताया। उन्होंने लोगों को भी समझाया कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर तोड़ने की अपेक्षा यही अच्छा है कि विवाहित होकर पवित्र जीवन जिया जाए और धर्म का कार्य किया जाए। अनियमित ब्रह्मचर्य की अपेक्षा नियमित वैवाहिक जीवन कहीं श्रेष्ठ और धर्मसम्मत है।

निस्पृह, निरभिमानी और विरक्त कन्फ्यूशियस को लाखों लोग अपना गुरु मानते थे, पर वे सदैव स्वयं को एक साधारण-सा धर्मसैनिक मानते थे और कहते थे कि मैं धर्म का आश्रय लेकर अपने जीवन को पूर्ण पवित्र और सार्थक बनाना चाहता हूँ। मुझे न धन की इच्छा है न सम्मान की। मुझे यदि कोई इच्छा है तो केवल यही है कि मैं एक पूर्ण मनुष्य बन सकूँ। उसी के लिए मैंने धर्म का आश्रय लिया है और जीवन में आध्यात्मिक सद्गुणों को जीने का अभ्यास प्रयास किया है।

वे कहा करते थे कि मनुष्य को सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सत्य केवल बुद्धि का विषय नहीं

अस्तु मात्र उसे जानने से ही काम नहीं चलेगा। सत्य को जानने के साथ-साथ उसे जीना भी आवश्यक है। बिना सत्य को जिए, सत्य को जानने का कोई लाभ नहीं। सत्य से विमुख होने पर ही मनुष्य का पतन होता है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह कभी भी सत्य से विमुख न हो। वह हमेशा आत्मनिरीक्षण करता रहे और अपने अंदर त्रुटियाँ दिखाई पड़ें तो बिना संकोच उन त्रुटियों को शीघ्रता से दूर करे।

अपने दोषों को ढूँढ़ना और उन्हें निकाल देना ही सच्ची वीरता है, बहादुरी है। श्रेष्ठ मनुष्य वह है, जो जैसा कहे वैसा ही आचरण करे। मैंने जीवन भर यही प्रयत्न किया है कि सद्गुणसंपन्न एक पूर्ण मनुष्य बनूँ और इसी को मैंने धर्माचरण माना है और इसी के लिए दूसरों को भी शिक्षा दी है।

परिपूर्ण जीवन की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि इंद्रियों की तृप्ति और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति से नहीं, वरन मानव जीवन की सफलता इस बात में है कि वह अपनी मानसिक और नैतिक दुर्बलताओं पर विचार करे। जिसने अपने जीवन को अनुशासित और संयमित बनाया, उसी का जीवन धन्य है।

दुःख-सुख, सफलता-असफलता और विपन्नता-संपन्नता में धैर्य, साहस और विवेक से काम लेकर मन की साम्यावस्था को बनाए रखना ही बुद्धिमानी का चिह्न है। कई राजाओं ने उन्हें सुख-सुविधा प्रदान करने का प्रस्ताव दिया, पर धर्म के खातिर उन्होंने कभी भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया।

उनके शिष्य उनका कष्टप्रद और सुख-सुविधा से रहित जीवन देखकर बहुत दुःखी होते, पर वे कहते—"उत्कृष्ट पुरुषों को कष्टसाध्य जीवनयापन करने के लिए तैयार रहना चाहिए। निकृष्ट पुरुष इन अवस्थाओं में टिक नहीं पाते और वे सुख-सुविधा के लिए सत्य और धर्म को भी छोड़ देते हैं। पर मुझे तो अल्पाहार, भूमिशयन और जीर्ण वस्त्रों पर जीते हुए सत्य और धर्म से कभी विमुख न होने पर ही गर्व है। यह पाप की कमाई से प्राप्त हुई विलासिता और धूम-धाम की वाहवाही की अपेक्षा मेरे लिए कहीं उत्तम है।"

सत्य और धर्म के प्रति ऐसी अटूट आस्था के कारण ही कन्फ्यूशियस को आज भी चीन ही नहीं, बल्कि पूरे संसार में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उनका 'यीजिंग' ग्रंथ आज भी विश्वप्रसिद्ध है।

हमें भी कष्ट-कठिनाइयों से कभी घबराना नहीं चाहिए और कभी भी सत्य और धर्म से विचलित नहीं होना चाहिए; क्योंकि कठिनाइयाँ हमें और अधिक साहसी बनाती हैं। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

अनुशासन की महिमा एवं इसका स्वरूप

अनुशासन कहते हैं अपने आप को अपनी उच्च प्रेरणा को समर्पित कर देना एवं पूरी तत्परता के साथ अपनी प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण कर आगे बढ़ते चलना। जो छोटी-से-छोटी चीज है, जिस पर नियंत्रण किया जाना है, उसकी ही क्रिया को अनुशासन कहते हैं यानी कि अनु का शासन, इस प्रकार हमारा जीवन स्व-नियंत्रित होता है एवं उसे विकास का अवसर भी क्षण- प्रतिक्षण मिलता जाता है।

अनुशासन है विवेकपूर्वक अपने जीवन को सुचारु रूप से गतिशील करना, अपनी आत्मा में छिपे दिव्य वैभव को उचित कार्यों एवं उद्देश्यनिष्ठ कर्त्तव्यों को समर्पित करना, आगे बढ़ना एवं बिना किसी व्यवधान के जीवन को सुमंगल की दिशा में ले चलना।

अनुशासन हमारे जीवन का परम सखा है, इसकी उत्पत्ति होती है स्वयं को जानकर एवं स्वयं की प्रतिभा को सही दिशा में अग्रसर करने से। अनुशासनहीन व्यक्ति कुछ भी कर ले, उसे जीवन में सफलता एवं उन्नति कभी प्राप्त नहीं हो सकते हैं; क्योंकि उसका विचार-तंत्र ही ठीक नहीं है, वह जो कुछ भी करता है अनमने भाव से, बिना एकाग्रता का संपूर्ण उपयोग किए, बिना समय-विभाजन एवं गुणवत्तापूर्ण कार्यपद्धति के।

हमारे जीवन के सभी कार्य तभी सफल हो सकते हैं, जब हम नियमपूर्वक उन्हें करें, उनके मध्य उपस्थित होने वाली बाधाओं को सहर्ष स्वीकार करें तथा जीवन को अपनी आदर्श कल्पना अनुसार सुगठित होने दें। यही महानता का राजमार्ग है एवं इसके लिए श्रम इतना करना पड़ता है कि अपनी मन:स्थिति को कभी गिरने न दें, स्वयं को जागरूक रखकर एकनिष्ठ होने का प्रयास करें।

हमारा जीवन अनुशासनरूपी श्रेष्ठ कार्यपद्धति से सँवरेगा। हम स्वयं को समझें एवं स्वयं के विकारग्रस्त होने से बचें। अंतत: अनुशासन हमारी आत्मा को ऊँचाई पर पहुँचाने के लिए ही होता है। जब हम इसे सीख जाएँगे तो कोई भी द्वंद्व, कष्ट-कठिनाई तथा मन का अस्त-व्यस्त रहना हमें परेशान नहीं कर पाएगा।

जिसे अनुशासन की समझ है, उसका जीवन स्वत: ही किसी महान आदर्श के परिपालन में जा लगता है। वह कुछ भी करे करेगा वह अपनी अंत:प्रेरणा से, औरों के उकसावे से नहीं स्वयं की आत्मदृष्टि से एवं स्वयं के उज्ज्वल विकास-पथ की दिशा में। अनुशासन अपनी शक्तियों को एकत्रित कर, उन्हें सुगठित बना महान एवं आश्चर्यजनक नीति-व्यवहार का पोषक है।

अनुशासन हमारे जीवन की मूल संपदा है, इसका उचित उपयोग कर हम क्या नहीं कर सकते हैं। हमें आदत डालनी होगी अनुशासित रहने की, इसमें कोई समस्या नहीं, बल्कि समस्या तब है, जब हम कोई भी कार्य अनुशासनविहीन करते हैं। तब व्यर्थ के क्रियाकलाप एवं असंगत नीति स्वत: ही हम पर सवार हो जाते हैं। हम पागलों की तरह इधर-उधर भटककर मात्र अपनी उर्जा का नाश करते हैं, इसलिए अनिवार्य रूप से अनुशासन का जीवन के पग-पग पर पालन करना चाहिए, इसके गतिरेक से बचना चाहिए तथा अपने जीवन को महान एवं सौंदर्यपूर्ण बनाने की दिशा में बढ़ चलना चाहिए। यही अनुशासन का जीवन मंत्र है। ❑

वैज्ञानिक साक्ष्यों के आलोक में सदानीरा सरस्वती नदी

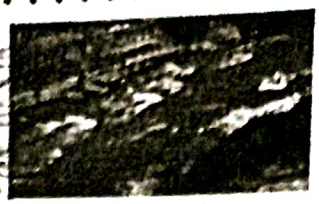

वेदों में सबसे प्रमुख रूप में वर्णित सरस्वती नदी आज आस्था के रूप में जनमानस के अंतर्मन में प्रवाहित है। प्रयागराज के त्रिवेणी संगम में इसकी चर्चा एवं बदरीनाथ धाम के समीप माणा गाँव के पास इसके स्थूलस्वरूप की उपस्थिति ही इसके अवशेष हैं, जो इसके स्वरूप के बारे में कुछ सोचने का आधार देते हैं, लेकिन तर्क, तथ्य एवं प्रमाण की कसौटी पर इनके स्थूलरूप की कल्पना किसी तार्किक परिणति तक नहीं पहुँच पाती।

आज विभिन्न वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर कई पुख्ता प्रमाण उपलब्ध हो रहे हैं, जो सरस्वती नदी के स्वरूप पर समुचित प्रकाश डाल रहे हैं, तार्किक कल्पना का पुख्ता एवं रोमांचक आधार प्रस्तुत कर रहे हैं और इस दिशा में अनुसंधान जारी हैं।

भूगर्भीय विज्ञान और रेडियो कार्बन डेटिंग के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर प्राप्त प्रमाणों के अनुरूप, सरस्वती नदी 80,000 वर्ष पूर्व से 20,000 वर्ष पूर्व तक अनवरत प्रवाहित रही और बीच में इसका प्रवाह थोड़ा बाधित अवश्य रहा हो, लेकिन फिर 9,000 वर्ष से 4,500 वर्ष पूर्व तक यह अनवरत रूप में प्रवाहित रही और 3000 ईसा पूर्व जलवायु परिवर्तन एवं भूगर्भीय हलचलों (टेक्टॉनिक परिवर्तनों) के कारण यह विलुप्त हो गई।

इसका प्रवाह हिमालय से आरंभ होकर हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान से होते हुए अंत में गुजरात के कच्छ के रण से होते हुए अरब सागर में गिरता था।

इसरो के भूगर्भी एवं पैलियोचैनल प्रमाण, रेत के टीलों के रेडियो कार्बन डेटिंग और पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर तमाम साक्ष्य सरस्वती नदी के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं और वैदिक एवं पुराण ग्रंथों में वर्णित आख्यानों को पुष्ट करते हैं। विषय विशेषज्ञ नीलेश ओक के अनुसार, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कह सकते हैं कि कम-से-कम 2 लाख वर्षों से सरस्वती नदी प्रवाहित रही है और कभी भी खंडित नहीं हुई।

अंतिम ग्लेशियल मेक्सिमम, जब पृथ्वी पर बरफ की मात्रा अधिकतम थी, के समय 35,000 से 20,000 वर्षों के बीच सरस्वती के जल की मात्रा कम हो गई थी, लेकिन बंद नहीं हुई थी और यह एक सदानीरा नदी रही और इसके इर्द-गिर्द सदैव से ही मानवीय संस्कृति और मानवीय विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ व तत्त्व विद्यमान रहे।

वैज्ञानिक साक्ष्यों के आधार पर 2 लाख वर्ष से सरस्वती नदी बीकानेर से होकर बह रही थी। इससे पूर्व के प्रमाण कहते हैं कि सरस्वती जयपुर-अजमेर से होकर बह रही थी। दक्षिण भारत और हिमालय की टेक्टॉनिक प्लेट्स के घर्षण से भूखंड में उभार के साथ नदी का प्रवाह उत्तर-पश्चिम की ओर सरका है। एक लाख बहत्तर हजार वर्ष तक बीकानेर से होकर सरस्वती नदी के बहने के प्रमाण मिलते हैं।

यह काल टोवा विस्फोट (लगभग 70 हजार वर्ष पूर्व) का भी रहा है, जिसके कारण शायद इसका प्रवाह उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ा है। इस तरह यह बीकानेर में एक लाख बहत्तर हजार से लेकर सत्तर हजार वर्ष तक बह रही थी और उत्तर-पश्चिमी दिशा की ओर सरक गई थी तथा यह कलिबंगा, हनुमानगढ़, सूरतगढ़ तक आ गई थी।

कलिबंगा में सत्तर हजार वर्ष से लेकर नष्ट होने तक सरस्वती नदी बहती रही। सरस्वती नदी कब विलुप्त हुई, इसको लेकर मतभेद हैं, लेकिन इतना स्पष्ट है कि 2000 ईसा पूर्व तक सरस्वती का अस्तित्व विलुप्त हो चुका था। नीलेश ओक महाभारत को सात हजार पूर्व घटित मानते हैं। महाभारत के 1500 वर्ष बाद, अर्थात 4500 ईसा पूर्व तक सरस्वती नदी नष्ट होना प्रारंभ हो गई थी, जिसका महाभारत में विनाशन के रूप में वर्णन मिलता है। महाभारत में वेदों में वर्णित गिरिभया आसमुद्रा के नाम से वर्णित उच्च पर्वतों से निकलकर सागर में गिरने वाली सरस्वती नदी का वर्णन नहीं मिलता।

एन खोंडे व साथियों द्वारा प्रस्तुत शोधपत्र से भी स्पष्ट होता है कि अंतिम 10000 वर्षों में राजस्थान, गुजरात से होकर बहने वाले सरस्वती नदी के क्षेत्र में कोई ऐसी नदी नहीं थी, जो समुद्र तक जाती थी, जबकि 10000 वर्ष से पहले वह नदी समुद्र में जाती थी। इस तरह ऋग्वेद का काल न्यूनतम 10000 वर्ष सिद्ध होता है एवं 6000 से 4000 वर्ष के बीच सरस्वती विलुप्त हो गई थी। अपने विकसित रूप में सरस्वती नदी का कलिबंगा में 8 किमी चौड़ा प्रवाह मिलता है, जो अन्यत्र उससे भी बड़ा हो सकता है।

हरियाणा में पैलियोचैनल की चौड़ाई 22 किमी तक मिली है। मालूम हो कि पैलियोचैनल (पुराप्रणाली) किसी निष्क्रिय नदी या धारा की सरिता का मार्ग होता है, जिसमें जल का प्रवाह बहुत काल से बंद हो और जो पूरी तरह या अधिकतर तलछट (जल द्वारा प्रवाहित एवं जमा की गई मिट्टी, रेत, बजरी) से भरी जा चुकी हो। यह भी स्पष्ट होता है कि सरस्वती का प्रवाह सतलुज और यमुना नदी से मिलकर बनता था। सतलुज अर्थात शुतुद्रि नदी सरस्वती का हिस्सा थी।

सतलुज उत्तर से दक्षिण की ओर बहती थी तथा यमुना, पूर्व से पश्चिम की ओर तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र से होकर बहती थी। सरस्वती सतलुज और यमुना नदी के बीच में बहती थी। कालक्रम में लगभग 50,000 वर्ष से यमुना नदी का सरस्वती नदी से निकलकर गंगाजी से मिलना प्रारंभ होता है और 42,000 वर्ष तक पूरी तरह से गंगाजी में मिल चुकी थी।

यह पहला चरण था, जब सरस्वती नदी का जल कम हुआ। 35,000 वर्ष पूर्व अंतिम ग्लेशियल मेक्सिमम में ठंढ बढ़ गई थी। जल ग्लेशियर के रूप में हिमालय तक सीमित हो गया और सरस्वती नदी में जल कम हो गया। 20,000 वर्ष पूर्व, अंतिम ग्लेशियल मेक्सिमम का अंत हुआ। ग्लेशियरों से जल पिघलना प्रारंभ हुआ, सागर में भी जल बढ़ना प्रारंभ हुआ और हिमालय के जल ने सरस्वती की जलराशि को समृद्ध किया।

रामायण काल में सरस्वती तीव्र प्रवाहित नदी के रूप में थी, लेकिन इसकी अधिक चर्चा नहीं होती। गंगा-यमुना की चर्चा अधिक होती है। 15,000 वर्ष में सबसे बड़ा झटका तब लगा, जब उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित सतलुज नदी का प्रवाह पूर्व की ओर रुख करने लगा। सिंह एवं गुप्ता का आईआईटी कानपुर, 2017 का शोधपत्र सिद्ध करता है कि सतलुज पश्चिम की ओर तेजी से मुड़ गई और रावी व सिंधु का हिस्सा बन गई।

रामायण में इसका वर्णन मिलता है। जब भरत नदी पार करते हैं, वाल्मीकि रामायण में वर्णन आता है कि मार्ग में पश्चिम की ओर प्रवाहित शुतुद्रि (सतलुज) नदी पड़ती है। सरस्वती नदी में जल की घटती मात्रा को इस रूप में समझा जा सकता है।

फिर 11000 से 9600 ई० पूर्व यंग ड्रायस काल आता, जब पुनः विश्वव्यापी शीतलता का दौर आया था और जो ग्लेशियर पीछे हट रहे थे, वे आगे बढ़ने लगे थे। सरस्वती नदी में जल की मात्रा में कमी आई।

इस तरह उपरोक्त कारणों के चलते सरस्वती नदी नष्टप्राय अवस्था में पहुँची। 7000 से 4500 ई० पूर्व में महाभारतकाल में अनिंद्य सरकार के शोधपत्र, 2016 के अनुसार, उत्तर-पश्चिमी भारत में मानसून की तीव्रता आई और इस मौसमी परिवर्तन के साथ सरस्वती का पुनर्जीवन हुआ।

महाभारत में इसके विपुल वर्णन मिलते हैं, कि सरस्वती नदी बहुत अधिक जल के साथ बह रही हैं, बलराम जी जिसका सुंदर वर्णन करते हैं। बलराम के पूर्व की ओर मुड़ने के विवरण राजस्थान-गुजरात सीमा पर पैलियोचैनल के रूप में आज भी साक्षी देते हैं।

महाभारत में सरस्वती नदी के प्रवाह के पर्याप्त वर्णन मिलते हैं, जहाँ कहीं सरस्वती नदी अदृश्य हो रही हैं, तो कहीं रेत से प्रकट होती हैं और कहीं रेत में पूरी तरह से लुप्त होती हैं—इनमें विनाश का भी वर्णन मिलता है। लोमश ऋषि के अनुसार, कहीं रेत के नीचे नदी बह रही हैं। इसका प्रमाण रेत के ऊपर सतह पर हरियाली व वृक्षों के रूप में मिल रहा था।

फिर 4500 ई० पूर्व में मानसून का प्रवाह कम हुआ और पहले से ही कई आघातों को सह चुकी सरस्वती नदी पूर्णतया नष्ट हो गई और एक मौसमी नदी बनकर रह गई, जो आज घग्गर-हकरा नदी के रूप में विद्यमान मानी जाती है। इस तरह सरस्वती नदी के संदर्भ में उभर रहे वैज्ञानिक साक्ष्य बहुत रोचक एवं रोमांचक हैं तथा अतीत के प्रति महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालने वाले हैं और सत्य एवं तथ्यों पर आधारित इतिहास के पुनर्निधारण की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास हैं। इस विषय पर शोध-अनुसंधान जारी हैं और इसमें रुचि रखने वाले शोधार्थी, इस विषय को अनुसंधान का विषय बनाकर भारतीय संस्कृति के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। ❑

अकबर ने बीरबल से पूछा कि सारे जानवरों का समूह दिखाई पड़ता है, फिर कुत्तों का समूह क्यों नहीं दिखाई पड़ता। बीरबल ने उत्तर देने के लिए एक दिन की माँग की। रात में उन्होंने एक कमरे में 10 भेड़ें और दूसरे कमरे में 10 कुत्ते बंद कर दिए। दोनों समूहों के लिए पर्याप्त भोजन सामग्री भी अंदर रख दी गई।

अगले दिन द्वार खोलते समय बीरबल ने अकबर को बुलाया और एक रात पूर्व संपादित की गई प्रक्रिया से उन्हें अवगत कराया। द्वार खोला गया। अकबर ने देखा कि भेड़ों ने सारा भोजन समाप्त कर लिया है व एकदूसरे से लिपटकर सो रही हैं, जबकि कुत्तों ने एकदूसरे को मार-मारकर लहूलुहान कर दिया व भोजन सामग्री भी ग्रहण नहीं की है।

बीरबल बोले—"महाराज! दोनों में यही अंतर है। कुत्ते एकता से नहीं रह पाते। इसलिए कष्ट भोगते हैं।"

विद्यार्थी जीवन में सफलता का आधार

जीवन में एकाग्रता के महत्त्व से सभी परिचित हैं। सांसारिक क्षेत्र हो या आध्यात्मिक, एकाग्रता ही सफलता का पहला आधार रहती है। अध्यात्म क्षेत्र में जहाँ ध्यान समाधि के चमत्कार, एकाग्र चित्त की शक्ति से उत्पन्न होते हैं, वहीं सांसारिक जीवन में उत्कृष्टता के शिखर का आरोहण एकाग्रता के बल पर ही संभव होता है और जब बात विद्यार्थी जीवन में सफलता की हो, तो वह भी इसका अपवाद कैसे हो सकता है।

यहाँ चर्चा विद्यार्थी जीवन में सफलता के लिए एकाग्रता की हो रही है, लेकिन ये सूत्र उन सभी के लिए भी न्यूनाधिक रूप में लागू होते हैं, जो ज्ञानार्जन करना चाहते हैं, जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनकर जीवन को सँवारना चाहते हैं और व्यक्तित्व में निहित सृजनात्मक क्षमताओं के अनावरण की इच्छा रखते हैं।

एकाग्रता के संदर्भ में सबसे बड़ी समस्या मन की चंचलता की आती है, जो आज से नहीं युगों से मनुष्य के लिए चुनौती रही है। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से इसी चंचल मन को काबू में करने की शिकायत करते हैं और इसको वश में करने का समाधान माँगते हैं। विद्यार्थी जीवन में भी इससे जूझते हुए सफलता की ओर आगे बढ़ना होता है।

विद्यार्थी जीवन में एकाग्रता से विमुख करने वाले प्रमुख कारक कुछ इस प्रकार से रहते हैं— पढ़ाई में रुचि का न होना, प्रतिकूल वातावरण एवं परिवेश, तनावग्रस्त जीवन, अस्त-व्यस्त दिनचर्या, बिगड़ी आदतें, नींद का अभाव, भावनात्मक विक्षोभ और बुरी संगत आदि।

इन समस्याओं का यथोचित समाधान करते हुए विद्यार्थी एकाग्रता का संपादन करते हुए, मनोवांछित सफलता को प्राप्त कर सकते हैं। पढ़ाई में रुचि के लिए आवश्यक हो जाता है कि विद्यार्थी अध्ययन के महत्त्व को समझें। जब इसका महत्त्व समझ आएगा तो रुचि स्वतः ही होने लगेगी। साथ ही पढ़ाई में यदि कुछ कठिनाई लग रही हो, तो पहले अपने पसंदीदा विषय से प्रारंभ करें। कठिन विषय के बजाय सरल को पहले हाथ लगाएँ। ऐसे में छोटी-छोटी सफलता के साथ धीरे-धीरे रुचि बढ़ेगी और आत्मविश्वास भी सुदृढ़ होगा।

कार्यस्थल एवं परिवेश की अध्ययन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यदि कार्यस्थल अस्त-व्यस्त व गंदा हो तो पढ़ाई में मन नहीं लगेगा। जिन पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों एवं नोट्स की तत्काल आवश्यकता होगी, इनके न मिलने पर चित्त खिन्न रहेगा व मन भी उचटा रहेगा। जबकि कार्यस्थल को साफ-सुथरा करने पर, टेबल व कमरे में अध्ययन सामग्री सुव्यवस्थित करने पर स्वतः ही मन कुरसी-टेबल की बैठक पर आसन जमाने का करेगा और पढ़ाई में भी मन लगेगा।

अध्ययन की उचित रणनीति भी पढ़ाई में अच्छे परिणाम के लिए अपेक्षित रहती है। अपनी भावी परीक्षा, कक्षा में दिए गए होमवर्क के अनुरूप टाइम टेबल बनाकर पढ़ाई करें। कम-से-कम एक विषय पर एक घंटे से पहले न उठें। बीच में उठने का मन करे, तो उसे अनुशासित करें।

धीरे-धीरे आदत पड़ जाएगी और दीर्घकाल तक पढ़ाई-लिखाई संभव होगी तथा इसके साथ अध्ययन के संतोषजनक परिणाम सामने आएँगे।

इसके साथ यह भी आवश्यक हो जाता है कि लगातार कार्य करते हुए बीच-बीच में थोड़ा ठहराव भी लें। थोड़े अंतराल में कुछ मिनट का ठहराव मन को विश्रांति देगा। इस संदर्भ में 20-20 का नियम सही रहता है, जिसमें प्रत्येक 20 मिनट के बाद 20 सेकंड का आराम उचित माना गया है।

इस बीच थोड़ा टहल सकते हैं, प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन कर सकते हैं, कुछ जल-पान कर सकते हैं। इससे तन-मन की थकान उतर जाएगी व नई ऊर्जा के साथ कार्य कर सकेंगे और अध्ययन में अपेक्षित परिणाम आते दिखेंगे।

अध्ययन के बीच में नाना प्रकार के व्यवधान आएँगे, जो मन को भटकाने का भरसक प्रयास करेंगे। ये मित्रों की गप्पबाजी का निमंत्रण हो सकता है। बिगड़ैल सहपाठियों की जोर-जबरदस्ती भी हो सकती है और मोबाइल व सोशल मीडिया का मोहक-मायावी प्रलोभन तो पहले से ही दिग्भ्रमित करने के लिए तत्पर रहता है।

यदि विद्यार्थी अपनी पढ़ाई के लिए कृतसंकल्प हैं, तो वे इनसे निपट सकेंगे। दोस्तों को विनम्रता से मना किया जा सकता है और समय की बरबादी के अवसरों को टाला जा सकता है। अपने आहार-विहार से जुड़ी बिगड़ी आदतें भी अध्ययन में एकाग्रता की बाधक बनती हैं। अत: अपनी आदतों पर कार्य करें व अपने आहार-विहार को अनुशासित करें। ये विद्यार्थी जीवन में सफलता या असफलता का बड़ा आधार व कारण हो सकते हैं।

आहार हलका रखें, पौष्टिक रखें। फास्टफूड से यथासंभव बचें। तन को भारी करने वाले, मन को चंचल करने वाले भोजन व पेय पदार्थों से बचें। अपनी दिनचर्या को सुव्यवस्थित व संतुलित रखें। कुछ समय व्यायाम या खेल-कूद के लिए अवश्य निकालें। इससे मस्तिष्क अधिक सक्रिय रहेगा। एकाग्रता व स्मरणशक्ति अधिक बेहतर रूप में कार्य करेगी।

इसके लिए आसन, प्राणायाम व ध्यान आदि के योग अभ्यास भी जोड़ सकते हैं। नित्य आत्मबोध से लेकर तत्त्वबोध की क्रियाएँ जीवन को सम्यक रूप में संतुलित करती हैं, इन्हें दिनचर्या में अवश्य स्थान दें। दिन भर का एक-एक पल बेशकीमती है और इसलिए व्यर्थ समय नष्ट करने वाले कारकों को पहचानें व क्रमिक रूप से इन्हें कम करें तथा अधिकाधिक समय अपने अध्ययन के साथ अपने मानसिक, भावनात्मक एवं कौशल विकास में नियोजित करें।

कुछ पल एकांत-शांत बैठकर अपने आध्यात्मिक स्रोत से जुड़ने का अभ्यास कर सकते हैं और जीवन का पुनर्गठन करते हुए नई ताजगी के साथ अपने कार्य में आगे बढ़ सकते हैं। परिवार का भी कर्त्तव्य बनता है कि अपनी संतानों का भावनात्मक संबल बनें। उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें, घर में पढ़ाई-लिखाई का अनुकूल वातावरण दें।

हॉस्टल के अभिभावकों का भी कर्त्तव्य बनता है कि वहाँ ऐसा परिवेश तैयार करें कि विद्यार्थी अपने समय का श्रेष्ठतम उपयोग कर सकें। बिगड़ैल बच्चों पर विशेष निगरानी रखें, जो वहाँ के वातावरण को दूषित करने की कुचेष्टाएँ करते हों। हॉस्टल में न्यूनतम अनुशासन के साथ पढ़ाई-लिखाई के अनुकूल श्रेष्ठ वातावरण सुनिश्चित करना वहाँ के अभिभावक का पावन कर्त्तव्य बनता है, जिससे पढ़ने आए छात्र-छात्राओं की एकाग्रता किसी भी रूप में बाधित न हो।

इस तरह विद्यार्थी एवं ज्ञानपिपासु जन अध्ययन के अनुकूल वातावरण तैयार करते हुए, उपरोक्त वर्णित उपायों के साथ एकाग्र चित्त होकर अपनी पढ़ाई-लिखाई कर सकते हैं और अभीष्ट ज्ञान का अर्जन करते हुए अपने बौद्धिक विकास को सुनिश्चित कर सकते हैं तथा लक्ष्यकेंद्रित पहल व अनुशासित दिनचर्या के आधार पर तैयारी करते हुए परीक्षा का सहर्ष सामना कर सकते हैं। ❑

हमारे युवा भ्रमित क्यों हैं?

किसी भी राष्ट्र को आगे बढ़ाने में उसके युवाओं का विशेष स्थान होता है। वे ही विभिन्न दिशाओं में उसकी बागडोर सँभाल अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं। यदि वे ही जाग्रत नहीं होंगे तो भविष्य का उज्ज्वल पथ कैसे प्रशस्त किया जा सकता है? भारत का दुर्भाग्य यह है कि हमने अपने मूल को नहीं पहचाना। जिस ब्रह्मविद्या से कभी हम समूचे विश्व का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ हुए थे, वह आज लुप्त हो गई है। हम उसे उजागर नहीं करते; क्योंकि हम उन विषयों में व्यस्त हैं, जिनसे हमारा भौतिक प्रयोजन तो पूरा होता है, परंतु हमारी आत्मा बेचैन ही बनी रहती है।

जिस शक्ति की हमें आवश्यकता है, जो हमारे सोए अंत:करणों को जगाए, जिसके द्वारा समस्त कठिनाइयाँ दूर हो सकें, हमारा समाज विषमता से उबर सके वह एक ही है। हमारी आत्मा में वह उच्च संस्कार विद्यमान हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अपने भाग्योदय की प्राप्ति करता है। यदि हम एकजुट हो भारत के यशोगान को तत्पर हो उठें, अपनी संकीर्णता त्याग दें तथा महानता का वरण करें तो निश्चित ही हम वह कर सकेंगे, जिसके लिए हमारा आवाहन हुआ है।

भारत सदियों से एक ही संदेश देता आया है कि अपनी आत्मोन्नति तथा इस संसार का कल्याण ही हमारा ध्येय होना चाहिए। हम इससे पीछे न हटें, जो भी हो अपने आदर्श की पूर्ति हेतु जुट पड़ें। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यह विशिष्ट समय है। इसमें हमारी आहुति एक सृजनशिल्पी के रूप में होनी चाहिए। युवा मन जागरूक हो, वह बिना भटके अपनी गौरव-गरिमा का स्मरण बनाए रखे तथा उन महापुरुषों पर दृष्टि डाले, जिन्होंने तन-मन-प्राण, उत्सर्ग की दिशा में लगा दिए।

हम क्यों भूल जाते हैं कि हम गुलाम रहे हैं, कभी हमने वे दुर्दिन भी देखे हैं, जब कोई हमारी सुनने वाला नहीं था। आज हम अपनी सुख-सुसज्जा की चिंता मात्र करते हैं, पर क्या बलिदानों का अमृत यों ही दरकिनार कर देने योग्य है? क्या अपनी अस्मिता के लिए लड़ मरने का संकल्प हममें नहीं होना चाहिए?

भारत वह है, जो सदा से प्रकाश का वाहक रहा है, फिर क्यों उसे विषमता के गर्त में जा गिरना था। वह उठ खड़ा हो, जिन भी मतभावों में उसने स्वयं को जकड़ लिया है, प्रचलन की अँधेरी खाई में, विश्वास की कमी से अभिशप्त—उसकी यह दयनीय दशा स्वीकारी नहीं जा सकती है। जो भी अपने को युवा कहते हों उस तेज-प्रताप को उजागर करें, जिसके बल पर पुन: भारत अपनी विरासत की ओर बढ़ चले। जीवन की यह स्थिति ऊहा-पोह भरी है तथा इसमें हानि होने के अवसर बने रहते हैं। हमारा स्वाभिमान यदि ऊँचा नहीं है तो हम परिस्थितियों से डिग जाएँगे, परंतु यदि हमारे हृदय में उस ईश्वर के प्रति अनुग्रह का भाव है तो हमारी विजय होकर रहेगी।

प्रत्येक युवा उत्कर्ष का प्रार्थी बने, क्षमताओं को गति देना सीखे तथा वह कर गुजरे जो कि भीतर की पुकार है। इस हेतु मार्गदर्शन हमें मिलता ही रहेगा, असंख्यों नर-रत्नों से विभूषित हमारा इतिहास कहता है कि हमारे युवा साधारण नहीं हैं, बल्कि उस परंपरा के अंग हैं, जिसमें त्याग, तपस्या और लोक-आराधना के स्वर उमगा करते हैं। ❑

जीवन में संतुलन है आवश्यक

आज मनुष्य भाग-दौड़ भरी, गला काट प्रतियोगिता के दौर से गुजर रहा है। भौतिकता की चकाचौंध के साये में अधिकाधिक धन-अर्जन और रौब-रुतबा बनाने की अंधी दौड़ में जीवन के शांति, संतुलन और सुकून पीछे छूट रहे हैं। व्यक्तिगत जीवन, रिश्ते, स्वास्थ्य और शौक इसमें गौण हो रहे हैं। अत्यधिक पेशेवर कार्य के नाम पर घर-परिवार एवं आंतरिक संतुलन को बिगाड़ती इस कार्यशैली को आधुनिक संस्कृति के रूप में परिभाषित किया गया है।

सोशल मीडिया के जुड़ने के साथ इसके दुष्परिणाम और भी अधिक विकराल होते जा रहे हैं। 199० और 2००० के दशक में औद्योगीकरण व निजीकरण के दौर में उद्यमशीलता में उछाल के बीच इस विकृत संस्कृति की नींव पड़ी, जब कैलिफोर्निया स्थित सिलिकॉन वैली नवाचार और उद्यमशीलता के वैश्विक केंद्र के रूप में स्थापित हुई।

अपने शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य एवं पारिवारिक संतुलन की कीमत पर अपने पेशेवर जुनून को हासिल करने का चलन एक कार्य संस्कृति के रूप में विकसित एवं विस्तारित होता है। आज यह जीवनशैली जनजीवन का हिस्सा बन चली है। ऑफिस में देर तक कार्य करना, बिना छुट्टी के कार्य में लगे रहना या सप्ताह अंत में लैपटॉप खोल कर काम में लगे रहना इस कार्य संस्कृति का हिस्सा है, जो आज की पेशेवर आवश्यकता प्रतीत होती है।

ये लोग पेशेवर लक्ष्यों को तेजी से और अधिक कुशलता से हासिल करने का प्रयास करते हैं और काफी हद तक इसमें सफल भी हो जाते हैं, लेकिन इनका ऑफिस और घर के बीच का संतुलन नहीं बन पाता और पारिवारिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं और तन-मन से जुड़ी तमाम तरह की विसंगतियाँ भी इनके साथ खड़ी हो जाती हैं। तनाव और बर्न आउट इसके स्वाभाविक दुष्परिणाम रहते हैं।

इस कार्य संस्कृति का निद्रा पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। अधिक कार्य के दवाव में ये लोग पूरी नींद नहीं ले पाते और अनिद्रा का शिकार हो जाते हैं। यहाँ तक कि सोते समय भी ये काम के ही बारे में सोचते रहते हैं। नींद की कमी से इनमें मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और स्ट्रोक का खतरा बढ़ जाता है। बिना उचित विश्राम के कार्य करने से हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और यदि यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहे तो हृदय संबंधी गंभीर रोगों का खतरा बढ़ जाता है।

इसके साथ पर्याप्त नींद न लेने व अनियमित खान-पान से मोटापा बढ़ जाता है। जिसका हृदय पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कॉर्टिसोल हॉर्मोन बढ़ने से हृदय की कार्य प्रणाली प्रभावित होती है। ध्यान न देने पर हृदयाघात (हार्ट अटैक) और कार्डियक अरेस्ट जैसे खतरे भी बढ़ जाते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार, यदि अनिद्रा को गंभीरता से नहीं लिया गया तो यह जानलेवा साबित हो सकती है।

एम्स ऋषिकेश के डॉ० रवि गुप्ता के अनुसार, एम्स के स्लीपिंग क्लीनिक में नींद के विभिन्न रोगों से पीड़ित 80 रोगी प्रत्येक सप्ताह आ रहे हैं, जिनमें से 40 अनिद्रा से पीड़ित होते हैं।

इनमें से आधे से अधिक युवा होते हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि लोग नींद के प्रति जागरूक नहीं हैं, वे अपनी जीवनशैली के संदर्भ में लापरवाह हैं, जिससे यह बीमारी लगातार बढ़ रही है। लोग अस्पताल तब आते हैं, जब अनिद्रा के कारण कोई हादसा हो जाता है।

अनिद्रा के कारण रोगियों में आत्महत्या की प्रवृत्ति भी प्रबल हो जाती है और यह एक कटु सत्य है कि वर्तमान भाग-दौड़ भरे जीवन में देर तक जागना, स्क्रीन का अधिक उपयोग, शारीरिक गतिविधियों की कमी, कार्य को लेकर तनाव युवाओं में जीवन का अंग बनते जा रहे हैं।

थकान के बाद भी लगातार काम करते रहने से कुछ समय बाद इसके दुष्प्रभाव दिखाई देने लगते हैं। जो संकेत देते हैं कि आप इस विकृति का शिकार हो चुके हैं और समय रहते अब इससे बाहर उबरने के प्रयास किए जाने अपेक्षित हैं।

इस स्थिति में आप बर्न आउट का शिकार भी हो सकते हैं, जिसके कारण शारीरिक और मानसिक रूप से अत्यधिक थकान हो जाती है। इसके फलस्वरूप मस्तिष्क की कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और निर्णय लेने में परेशानी होने लगती है।

बिना विश्राम के अनवरत श्रम से उद्विग्नता का खतरा बढ़ जाता है। इससे व्यक्ति अपराध बोध का भी शिकार हो सकता है और हार जाने या कुछ खो जाने का भी भय सताने लगता है। यह स्थिति आगे बिगड़ने पर अवसाद का भी कारण बन सकती है। समय रहते बचाव के उपाय कर बहुत सीमा तक इसके खतरों से बचा जा सकता है।

कार्य के प्रति समर्पित रहना बहुत अच्छी बात है, लेकिन संतुलन बनाना भी उतना ही आवश्यक है। इसलिए कार्य के साथ आम जीवन में संतुलन भी साधें। स्वयं को सफलता की अंधी दौड़ का हिस्सा न बनने दें। ईमानदारी के साथ धन-संपत्ति व नाम कमाना कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन अपने स्वास्थ्य एवं पारिवारिक सुख-शांति की कीमत पर नहीं, जो आगे चलकर संकट व अवांछनीय परिणाम का कारण बन सकते हैं।

इसके प्रभाव से बचने के लिए कार्य के बीच में छोटे-छोटे आराम के क्षण लें। कुछ समय के लिए अपने कार्यस्थल से दूर चले जाएँ। टहलें और हलका संगीत सुनें। सप्ताह अंत में अपने परिवार जनों या मित्रों के साथ बाहर घूमने निकलें। लंबी छुट्टियाँ तनाव को कम कर सकती हैं, बर्न आउट को रोक सकती हैं।

व्यायाम को दिनचर्या का हिस्सा बनाएँ। ताजे फल, सब्जी, मोटे अन्न, प्रोटीन और स्वस्थ वसा का सेवन करें। पर्याप्त जल लें और समय पर भोजन व शयन का क्रम बनाए रखें। चाय-कॉफी का सेवन कम-से-कम करें। इनके स्थान पर अन्य वैकल्पिक पेय को लिया जा सकता है। स्क्रीन-टाइम को कम करें तथा 7-8 घंटे की अच्छी नींद लेने का प्रयास करें।

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति, द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति, द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥

अर्थात द्वैत-अद्वैत दोनों का जो प्रकाशक है, स्वयं प्रकाश रूप है, वही सत्य है, वही आत्मा है।

अच्छी पुस्तकों को पढ़ें, सोशल मीडिया पर प्रेरक एवं स्वस्थ मनोरंजन को स्थान दें। अपनी क्षमता अनुरूप योगासन, प्राणायाम व ध्यान भी कर सकते हैं, जिनके साथ शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरह का स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है।

इस तरह कार्य के साथ अपने स्वास्थ्य, पारिवारिक जीवन एवं मन:स्थिति के मध्य संतुलन साधते हुए, वर्तमान समय के जीवन के दुष्प्रभावों से बाहर निकल सकते हैं और एक सफल-सुखी जीवन को सुनिश्चित कर सकते हैं। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—198

सूफी संगीत पर शोध

भारतवर्ष का इतिहास अपनी धर्म, संस्कृति और कलाओं की विविधता से परिपूर्ण रहा है। ऋषि-मुनि, संत, फकीर, गुरुभक्त, साधक-सिद्ध, योगी-तपस्वी जैसी दिव्य आत्माओं और उनकी श्रेष्ठ परंपराओं से यहाँ का जीवन परिपुष्ट रहा है। समय-समय पर अनेक धर्म, संस्कृति, संप्रदाय और परंपराएँ यहाँ जन्म लेकर साथ-साथ पली-बढ़ी और विकसित हुई हैं।

यहाँ की भूमि ने बाहर से आए लोगों की भी कला-संस्कृति और धर्म को स्वयं में समाहित कर पुष्ट और जीवंत बनाने का कार्य किया है। मुसलिमों के साथ आई सूफी परंपरा इसी का एक उदाहरण है। इस परंपरा में सूफी फकीरों-संतों द्वारा जिस संगीत का गायन किया गया, उसे भारतीय संस्कृति की निर्गुण भक्तिधारा से संबद्ध दिव्य संगीत की श्रेणी में रखा जाता है।

भारतीय संस्कृति में सूफी परंपराओं के आत्मसात् हो जाने का एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि अध्यात्म, प्रेम, सद्भाव जैसी विशेषता सूफी विचारधारा के मूल में समाहित रही है। भारतभूमि पर ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती द्वारा इस परंपरा की नींव रखी गई थी, जिसमें कबीर की भाँति रहस्यवादी स्वरूप में लौकिक प्रेम को आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति की गई है।

इस परंपरा में उन्होंने अपने जिन सिद्धांतों एवं विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया, उसका मुख्य माध्यम संगीत ही रहा। इस सूफी संगीत ने भारत की स्थानीय भाषा और संस्कृति के अनुरूप परिवर्तित हो एक व्यापक स्वरूप प्राप्त किया है।

सूफी संगीत के इस व्यापक स्वरूप एवं इसकी विशेषताओं को आधार बनाकर विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य संपन्न किया गया है। भारतीय शास्त्रीय संगीत विभाग के अंतर्गत वर्ष-2022 में यह शोध अध्ययन शोधार्थी जिनिया सोफट द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० शिवनारायण प्रसाद के निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

इस विशिष्ट शोध का शीर्षक है—'**दि इटरनल जर्नी ऑफ सूफी म्यूजिक (इंडियन कान्टेक्स्ट)**।' इस संपूर्ण अध्ययन को शोधार्थी द्वारा पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है—

प्रथम अध्याय—'**भारतीय संगीत का परिचय**' है। इसके अंतर्गत भारतीय संगीत की उत्पत्ति, अर्थ, परिभाषा प्रस्तुत करते हुए नाद संगीत का विवेचन किया गया है। इसके साथ ही भारतीय संगीत के विकास को ऐतिहासिक क्रम में वैदिक युग, मध्य युग एवं आधुनिक युग के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए भारत में शास्त्रीय संगीत के प्रमुख आधारों और पहलुओं की विस्तृत व्याख्या की गई हैं।

संगीत शब्द 'सम' और 'गीत'—इन दो शब्दों से मिलकर बना है। सम का अर्थ पूर्ण अथवा साथ है तथा गीत का तात्पर्य गाना। संगीत में गान, नृत्य और वादन—तीनों समाहित हैं, परंतु सामान्य रूप से संगीत का अर्थ गाने से ही लिया जाता है, यथा—**सम्यक गीतम् इत संगीतम्** अर्थात ध्यानपूर्वक सही रूप से गायन ही संगीत है।

भारतीय अवधारणाओं में संगीत की उत्पत्ति के अनेक दृष्टांत एवं आख्यान मौजूद हैं; जैसे, यह परमपिता ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ है तथा महादेव शिव और देवर्षि नारद द्वारा प्रचलित किया गया है। पुराण, शास्त्रों में संगीत की उत्पत्ति को ब्रह्मांड की प्रथम ध्वनि 'नादब्रह्म', ऊँकार के रूप में उल्लेखित किया गया है। इसके अतिरिक्त कई विचारकों द्वारा प्रकृति में व्याप्त ध्वनियों; जैसे—जलधाराओं, नदियों, पशु-पक्षियों की आवाजों आदि से संगीत की उत्पत्ति कही गई है।

नारद संहिता में संगीत के सात स्वर—सा, रे, गा, मा, प, ध, नि हमारे शरीर के अंगों क्रमशः सिर, छाती, गला, भुजाओं, कूल्हे और पैर का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संगीत सिद्धांतों में संगीत का उच्चतम दिव्य रूप 'नाद' संगीत में समाहित है—**'नादमयं जगत् सर्वम्'** नाद ही संगीत का मूल है और संगीत ही ध्वनि का विज्ञान है। साधना परंपराओं में मंत्र, ध्वनि, ध्यान आदि से इसी नादरूपी ब्रह्म की प्राप्ति का, नादोपासना से आत्मसाक्षात्कार का वर्णन मिलता है।

यही कारण है भारत में संगीत का अलौकिक एवं आध्यात्मिक पक्ष सर्वोपरि माना जाता है। लौकिक जीवन में इसके जितने भी आयाम एवं स्वरूप हैं, वे सभी मानवीय अंतराल को ऊँचा उठाने और अलौकिक क्षेत्र की ओर आगे बढ़ाने की दृष्टि से ही विकसित हुए हैं।

वैदिक युग में से प्रमुख चार संहिताओं में एक 'सामवेद' को संगीत का ही वेद माना जाता है, परंतु सभी वैदिक संहिताओं में संगीत गायन, वादन, नृत्य आदि का श्रेष्ठतम रूप उल्लेखित है। संगीत की यह दिव्य परंपरा उपनिषद्, महाकाव्य, जैन, बौद्ध तक सभी कालों में विस्तृत-विकसित स्वरूप में दिखाई देती है। मध्यकाल में यही संगीत मुगलों की सभ्यता से प्रभावित होकर उत्तर और दक्षिण दो शाखाओं में बँट गया।

मुगल संगीत का प्रभाव उत्तर शाखा पर ही हुआ और इसी क्रम में सूफी संगीत भी विकसित हुआ है। उत्तरी संगीत को हिंदुस्तानी संगीत भी कहा जाता है। यह बंगाल, बिहार, ओडिसा, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में प्रचलित है। शोधार्थी ने हिंदुस्तानी संगीत के मूलभूत आधार, प्रकार एवं स्वर-विन्यास आदि का विस्तृत विवेचन किया है। इसके साथ ही इसमें भारतीय संगीत के घरानों एवं गुरु-शिष्य परंपरा के स्वरूप को भी उजागर किया गया है।

द्वितीय अध्याय है—**'सूफीवाद और सूफी संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन।'** इसके अंतर्गत सूफीवाद की उत्पत्ति, भारत में इसका आगमन, विशेषताएँ, वेदांत से समानता, सूफी संगीत का स्वरूप, संप्रदाय, प्रभाव व इसके प्रचलित महत्त्वपूर्ण आयामों की विस्तृत व्याख्या-विवेचना प्रस्तुत की गई है।

सूफी उसे कहा गया है, जो व्यक्ति जीवन के बाह्य और आंतरिक दोनों पक्षों को जानता है। 'सफ' शब्द से लिया गया सूफी शब्द का तात्पर्य अग्रिम पंक्ति में खड़े रहने वाले से है। कुछ विद्वानों ने इसे रहस्यवादियों के रूप में भी बताया है। सूफी का एक अर्थ 'सोफिया' के तात्पर्य से ज्ञानी या बुद्धिमान व्यक्ति भी है।

माना जाता है कि सूफीवाद की उत्पत्ति एक हजार वर्ष पहले इराक के बखरा शहर में हुई थी। चिश्ती संप्रदाय के रूप में यह भारत में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में आया। सूफीवाद प्रेम और भक्ति द्वारा मनुष्य के ईश्वर से संवाद के विश्वास पर विकसित और व्यापक बना है। इसमें एकेश्वरवाद का विश्वास है और वहीं एक ईश्वर परम प्रेमी के रूप में प्रतिष्ठित है।

सूफी में अल्लाह और दुनिया से जुड़ी दो प्रमुख धाराएँ हैं—वजुद्दीया और सउदीया। इसके रहस्यवाद के कारण इसे वेदांत के समान निर्गुण माना जाता है। इसमें सूफीयाना अर्थात रहस्यवादी आंतरिक ज्ञान का प्रेमी माना गया है। इसी सूफीयाने तरीके से अबुल हसन हुज द्वारा सर्वप्रथम भारत के विभिन्न भागों में सूफीवाद का प्रचार-प्रसार किया गया।

सूफीवाद की विशेषताएँ हैं—
(1) वर (अपरिग्रह),
(2) इताफ (करुणा),
(3) फक (गरीबी-सादगी),
(4) सब्र (धैर्य),
(5) तौबा (दुष्कर्मों का असम्मान),
(6) खौफ (डर),
(7) राज (आशा),
(8) तवाखुल (संतुष्टि) और
(9) रजा (ईश्वर के प्रति प्रेम)।

सूफीवाद को इसलाम की आंतरिक व आध्यात्मिक विचारधारा भी कहा जाता है। इसके मुख्य संप्रदाय हैं—चिश्ती, सुहरावर्दी, कादरिया और नक्षवंदिया। इनके विचारों-सिद्धांतों को प्रचारित करने का माध्यम ईश्वरीय प्रेम से ओत-प्रोत संगीत, गान, नृत्य आदि रहा, जिसे सूफी संगीत के रूप में जाना जाता है।

इस अध्ययन का तृतीय अध्याय है—**भारत में सूफी संगीत की परंपरा और उसके संगीत रूप**। इसमें सूफी संगीत का स्वरूप समा, पारंपरिक सूफी रूप व लोकप्रिय सूफी रूप की विस्तृत विवेचना की गई है।

सूफियों द्वारा प्रयुक्त संगीत को समा कहा जाता है, जिसका अर्थ है पढ़ना और गाना। ईश्वर के नामों का लयबद्ध जाप व पुकारना इसमें समाहित है।

पारंपरिक सूफी संगीत के रूपों में—
(1) नगमा,
(2) जिक्र
(3) कौल
(4) कलबाना,
(5) नक्श-ओ-गुल,
(6) नक्श-निगार
(7) बासित
(8) सोहिला,
(9) सवान-गीत और
(10) सिहर्फी है।

इसके अतिरिक्त धामर, दोहरा, मनहदा, सालोक, तीव्रत, सवेला आदि सूफी संगीत की कुछ प्रचलित परंपराएँ हैं। लोकप्रिय सूफी संगीत में काफी, सूफीयाना कलाम, रंग, कव्वाली, ख्याल, गजल, टप्पा, तराना, वसंत, भजन, ठुमरी, सूफी गीत आदि प्रसिद्ध हैं।

शोध का चतुर्थ अध्याय है—**भारतीय सूफी संगीत में सूफी मनीषियों का योगदान**। इसके अंतर्गत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो, सुल्तान बहू, शाह हुसैन, बुल्ले शाह, संत कबीर, गुरु नानक देव आदि की संगीत रचनाओं में सूफी संगीत के विकसित स्वरूप की विवेचना की गई है।

भारतीय समकालीन संगीत के बहुआयामी विकास में सूफी संतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदुस्तानी सूफी संत कवि, इतिहासकार, दार्शनिक होते हुए भी शास्त्रीय गायन के लिए अत्यंत समर्पित थे। इनसे प्रेरित व पोषित होकर भारत में सूफी गायकों की एक समृद्ध परंपरा विकसित हुई है।

सूफी संगीत में अलौकिक प्रेम, भक्ति के साथ-साथ युग चेतना और लोक संस्कृति की अमूल्य निधि भी समाहित है। बारहवीं सदी में मोइनुद्दीन

हसन चिश्ती ने अजमेर में अपने कव्वाल शिष्यों को लोकभाषा में पारंपरिक गीतों, छंदों और लोकधुनों की ओर प्रेरित किया। इन्हीं के शिष्य बाबा फरीद एक महान मानवतावादी सूफी संत हुए। अपने रहस्यवाद और धार्मिक प्रेरणाओं से चिश्ती संप्रदाय को इन्होंने ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

महबूब-ए-इलाही के नाम से प्रसिद्ध संत हजरत निजामुद्दीन औलिया संत फरीद के प्रिय शिष्य रहे। इनका सिद्धांत ईश्वर प्रेम के साथ-साथ सबकी सेवा और आपसी प्यार रहा। सामान्य भाषा में गहन आध्यात्मिक अर्थ को समझाने के कारण इन्हें योगी सिद्ध भी कहा गया।

चौदहवीं सदी में अमीर खुसरो ने अनेक गायन शैलियों का विकास किया और संगीत के माध्यम से एकेश्वरवाद और मानव धर्म का संदेश सुनाया। इसी तरह सुल्तान बदू ने भी मातृभाषा पंजाबी में सूफी दार्शनिक विचारधारा को संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया।

एक और पंजाबी सूफी संत शाह हुसैन हुए, जो अकबर के समकालीन थे। शाह ने लगभग 150 काफियाँ रची हैं। बुल्लेशाह ने भी अनेक राग आधारित छंदों और गीतों की रचनाए कीं। वे गायन और नृत्य दोनों में पारंगत थे। पंद्रहवीं सदी के संत कबीर के विचारों, रचनाओं, गीतों से तो सभी परिचित हैं।

वे परम रहस्यवादी दार्शनिक, भक्त, विचारक संत हुए हैं। हिंदू-मुसलिम दोनों में समान रूप से इनकी प्रतिष्ठा रही है। कबीर की भाँति गुरु नानकदेव के विचारों ने भी ईश्वरीय प्रेम, धर्म की सच्ची भावना और मानवीय व्यवहार के आदर्शों में रचनाएँ कीं। जनचेतना और सत्यमार्ग के लिए उनकी बानी आज भी समाज में मंत्र की भाँति प्रतिष्ठित है। उनकी भक्ति-भावना से समाज और भजनों से संगीत आज भी दिशाधारा प्राप्त कर रहा है।

इस अध्ययन का पंचम सोपान है—**आधुनिक युग में सूफी संगीत का चलन**। इसके अंतर्गत आधुनिक सूफी संगीत और फ्यूजन, स्वास्थ्य उपचार में सूफी संगीत का प्रयोग, प्रसिद्ध सूफी गायक और उनकी रचनाएँ, सूफी विचारकों के ग्रंथ आदि का विवेचन करते हुए सूफी संगीत के लिए प्रयुक्त संगीत वाद्ययंत्रों, सूफी नृत्य, सूफी संगीत में महिला कलाकारों का योगदान तथा सूफी संगीत और प्रज्ञा संगीत के संबंध की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

सूफी संगीत की प्रमुख गायन शैली कव्वाली को आधुनिक समय में अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त हुई है। अनेक संगीतकारों, गायकों का क्षेत्र सूफी संगीत की प्रस्तुतियाँ ही रहा है। सूफी के साथ अन्य संगीत शैली से मिलकर बना संगीत भी आज चलन में है। फिल्मों में भी सूफी गायन का प्रभाव देखा जा सकता है।

कवच-सत्यश्रुतः

अर्थात वे कवि अर्थात ऋषि एक दिव्य सत्य को जानने-समझने वाले थे।

इस महत्त्वपूर्ण शोध का अंतिम सोपान **'उपसंहार'** के रूप में है। इसके अंतर्गत सभी अध्यायों का सारांश प्रस्तुत करते हुए शोधार्थी ने शोध के महत्त्वपूर्ण पहलुओं, उपादेयता एवं निष्कर्ष के रूप में इस शोध अध्ययन का महत्त्व प्रकट किया है।

आदिकाल से भारतीय धर्म, संस्कृति और जीवन की आत्मा में संगीत आनंद का पर्याय बन कर रहा है। इसकी बहुआयामी विशिष्टताओं में आध्यात्मिक और दिव्य संगीत का स्थान सदैव आदर्श रूप में विद्यमान है। संगीत के यही तत्त्व एवं विरासत के अंश सूफी संगीत में भी समाहित रहे हैं, जिन्हें इस शोध में अत्यंत स्पष्टता और प्रामाणिकता के साथ सामने लाने का सराहनीय प्रयास किया गया है। ❑

युगगीता – 305

विनाशशील में अविनाशी को देख पाने का ज्ञान

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की उन्नीसवीं-बीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के अठारहवें श्लोक पर चर्चा इससे पिछली किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता—इन तीनों से कर्मप्रेरणा होती है एवं करण, कर्म तथा कर्त्ता—इन तीनों से कर्मसंग्रह होता है। इससे पिछले श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि तीन तरह के लक्षणों वाले व्यक्तित्व कर्म से बँधते हैं और इस सूत्र में वे स्पष्ट करते हैं कि उनको बँधने का आधार क्या होता है। वे कहते हैं कि जब तक मनुष्य के भीतर अहंकार और लिप्तता रहती है तब तक ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों के कारण कर्म को करने की प्रेरणा होती है। ज्ञान होने से व्यक्ति कर्म करने को प्रवृत्त होता है और ज्ञान जिस विषय का होता है, उसे ज्ञेय कह करके पुकारते हैं और ज्ञान जिसको होता है, उसे ज्ञाता या परिज्ञाता कह करके पुकारा जाता है।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—ये तीनों मिलकर कर्म को करने की प्रवृत्ति का हेतु बनते हैं और जहाँ ये तीनों हुए, वहाँ इनके सहयोग से कर्मसंग्रह की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। कर्मसंग्रह के तीन प्रमुख आधार होते हैं। पहला आधार है—करण। जिन साधनों से कर्म किया जाता है, उन्हें करण कह करके पुकारते हैं। करण से संबंध जोड़ने वाला कर्त्ता कहलाता है। इन सारे तथ्यों को अर्जुन के सम्मुख रखने का एक ही उद्देश्य है कि वो यह स्पष्ट समझ सके कि कर्मबंधन का कारण क्या है। भगवान जानते हैं कि जो इसे जान गया वो कर्म से मुक्त होने की राह स्वयं ही निर्धारित कर लेता है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण अगला श्लोक कहते हैं कि

ज्ञानं कर्म च कर्ता च, त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥19॥

शब्दविग्रह—ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः, प्रोच्यते, गुणसङ्ख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि।

शब्दार्थ—गुणों की संख्या करने वाले शास्त्र में (**गुणसङ्ख्याने**), ज्ञान (**ज्ञानम्**), और (**च**), कर्म (**कर्म**), तथा (**च**), कर्त्ता (**कर्ता**), गुणों के भेद से (**गुणभेदतः**), तीन-तीन प्रकार के (**त्रिधा**), ही (**एव**), कहे गए हैं (**प्रोच्यते**), उनको (**तानि**), भी (तू मुझसे)(**अपि**), भली भाँति (**यथावत्**), सुन (**शृणु**)।

सर्वभूतेषु येनैकं
भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु
तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ *20*॥

शब्दविग्रह—सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते, अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम्॥

शब्दार्थ—जिस ज्ञान से (मनुष्य)(**येन**), पृथक-पृथक (**विभक्तेषु**), सब भूतों में (**सर्वभूतेषु**), एक (**एकम्**), अविनाशी (**अव्ययम्**), परमात्मभाव को (**भावम्**), विभाग रहित (समभाव से स्थित)(**अविभक्तम्**), देखता है (**ईक्षते**), उस (**तत्**), ज्ञान को (तो तू)(**ज्ञानम्**), सात्त्विक (**सात्त्विकम्**), जान (**विद्धि**)।

अर्थात गुणों का विवेचन करने वाले शास्त्र में गुणों के भेद से ज्ञान और कर्म तथा कर्त्ता तीन—तीन प्रकार से कहे जाते हैं, उनको भी तुम यथार्थ रूप से सुनो। जिस ज्ञान के द्वारा साधक संपूर्ण विभक्त प्राणियों में विभागरहित एक अविनाशी भाव को देखता है—उस ज्ञान को तुम सात्त्विक समझो।

श्रीभगवान यहाँ अर्जुन को स्पष्ट करते हैं कि शास्त्रों में कर्म तथा कर्त्ता भी, उनके गुणों के भेद के आधार पर तीन प्रकार के कहे गए हैं। उनमें से प्रथम प्रकार सात्त्विक बताया गया है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस ज्ञान के द्वारा साधक विभक्त प्राणियों में भी एक अविभक्त, अखंड चेतन सत्ता को देख पाता है—वह ज्ञान सात्त्विक ज्ञान है। यों दिखने की दृष्टि से लोग, व्यक्ति, वस्तुएँ अलग-अलग रूप, आकार, भेद की प्रतीत होती हैं, परंतु उन सबमें एक ही शुद्ध, चैतन्य, निर्विकार, शाश्वत सत्ता विद्यमान है—जिसे हम परमात्मा कह करके पुकारते हैं। वस्तु, व्यक्ति की प्रतीति अलग होते हुए भी उनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है—मात्र अज्ञान के कारण ही ऐसा प्रतीत होता है।

सात्त्विक ज्ञान के कारण जब यह अज्ञान तिरोहित हो जाता है एवं सात्त्विक ज्ञान मात्र शेष रह जाता है, तब साधक विनाशशील प्राणियों में भी अविनाशी परमात्मा को देख पाता है। यहाँ भगवान कहते हैं कि '**गुणसंख्याने**' अर्थात गुण संख्या के आधार पर। सांख्यशास्त्र में तीन गुणों और पच्चीस तत्त्वों की संख्या को बताया गया है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के तीन गुण-सत्त्व, रज एवं तम हैं। इन तीनों गुणों के कार्य, स्वरूप, प्रणालियाँ एकदूसरे से भिन्न हैं। गीता के चतुर्दश अध्याय में उनका विस्तार से वर्णन है।

बंकिम बाबू (बंकिमचंद्र चटर्जी) का प्रसिद्ध उपन्यास 'आनंदमठ' की योजना का बीज यदि किसी को विकसित रूप में देखना हो तो उसे युग निर्माण योजना द्वारा धर्ममंच के माध्यम से नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रांति की दिशा में किए गए असाधारण कार्यों को देखना चाहिए और इस आंदोलन का मूल्यांकन करना चाहिए।

श्रीभगवान कहते हैं कि उन तीन गुणों की भिन्नता से ज्ञान, कर्म तथा कर्त्ता का सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक भेद होता है—उसको वे अर्जुन को समझाएँगे। इनमें से सात्त्विक पर वे सर्वप्रथम प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि भिन्न-भिन्न भूतों व प्राणियों में जो एक अविभक्त सत्ता को देख पाता है (**येन एकं अविभक्तं अव्ययं भावं ईक्षते**)—उसी के ज्ञान को सात्त्विक ज्ञान समझा जाना चाहिए। (क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

साहस जुटाएँ, संकल्प जगाएँ

(उत्तरार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि वे चिंतनशील व्यक्ति को समाज के उत्थान के लिए उसके विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती हैं और उनकी सहृदयता का स्मरण भी प्रत्येक गायत्री परिजन को कराती हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी प्रत्येक गायत्री परिजन को साहस धारण करने एवं संकल्पित होने के लिए प्रेरित करती हैं। वे कहती हैं कि हमें पूज्य गुरुदेव के जीवंत उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है और यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि जीवनपर्यंत कितनी कष्ट-कठिनाइयों के मध्य पूज्य गुरुदेव ने गायत्री परिवार की स्थापना की एवं अखण्ड ज्योति को प्रज्वलित किया। वंदनीया माताजी कहती हैं कि इन सब उपलब्धियों के पीछे का आधार एक ही है और वह है परमपूज्य गुरुदेव की स्वयंसेवक वृत्ति एवं आत्मविश्वास-ईश्वरविश्वास से परिपूर्ण उनका जीवन। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

भगवान पर भरोसा

बेटे, उसमें एक पत्र आया, जिसमें लिखा हुआ था कि यदि आपने आयोजन किया तो हम बम फेंकेंगे और तंबू में आग लगाएँगे। एक दिन तो जरा मेरा मन ऐसा ही चिंताजनक रहा। मैंने कहा कि हमें कुछ हो जाए तो कोई बात नहीं, पर हमारे इतने परिजन, हमारे इतने बालक आए हैं, सामान्य मौत से कोई जाए तो जाए, पर बेमौत क्यों जाए ऐसा लगा, पर दूसरे ही पल लगा कि अरे! जिसकी शक्ति है, उसकी शक्ति कराएगी। दो टके के व्यक्ति जो बकते रहते हैं इनसे वह चलेगा? विचार ही नहीं किया।

ऐसा अभूतपूर्व कार्यक्रम हुआ कि जिसमें आप लोग भी थे, बहुत सारे लोग थे। आपमें से जिन्होंने शपथ समारोह भी देखा, श्रद्धांजलि समारोह भी देखा, मैं उसी का उल्लेख कर रही थी कि सन् 1958 के यज्ञ में यह हो गया था कि जो वहाँ के व्यक्ति थे, जो कुछ विरोधी पार्टियाँ थीं, हमारा तो किसी से विरोध नहीं था, पर उनका तो विरोध चल रहा था।

उनको तो मालूम था कि हमारे पेट पर लात मारी जा रही है, पंडे कहते थे कि साहब! यह करते हैं। हमारा कार्य गायत्री वाले करते हैं तो हमारे यहाँ कौन आवेगा? तो उनका अपने ढंग से विरोध था। सबका विरोध था और यह योजना थी कि पानी की जो टंकी है, इन टंकियों में जहर घोला जाएगा तो जितने भी आएँगे और पानी पिएँगे तो मरेंगे और जो खाद्य पदार्थ बनेगा उसमें जहर मिलाएँगे।

गुरुजी ने भी कह दिया कि देखा जाएगा, जो मिलावेगा वो भी देखा जाएगा। हमारा तो रखवाला भगवान है, वही हमारे साथ रहेगा, हमारा गुरु है, गायत्री माता हैं, बस, संसार में और कोई हमारा

नहीं है और उसी का हमें सहारा है। अब हमें डरने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा कि फिर हम डरें क्यों?

बच्चों की बात आई। एक ने टेलीफोन कर दिया कि आपके बच्चों का अपहरण होगा। हमने दोनों बच्चों को अलग कर दिया। समझ लीजिए कि जिस माँ ने, जिस बाप ने अपने बच्चों को अलग कर दिया हो और वह सालों अलग रहें तो उस माँ के ऊपर क्या बीतेगी, कोई माँ ही जान सकती है।

दोनों बच्चों को हमने अलग कर दिया कि ले जाओ जिसको चाहिए, वह ले जाओ, हम अपने पास नहीं रखेंगे, पर हमको जो कार्य करना है, करेंगे जरूर। कोई और होता तो रुक जाता, पर वह नहीं रुके। उन्होंने कहा कि कार्यक्रम होगा ही और वो हो करके ही रहा। उस समय यह कहा गया कि यह समारोह या तो महाभारत काल में हुआ होगा या अब हुआ है, ऐसा समारोह तो कभी नहीं हुआ।

मिशन फैलता चला जाएगा

अब तो मिशन इतना फैलता हुआ चला जा रहा है कि सारे विश्व में छा रहा है। अभी अश्वमेध के जो कार्यक्रम आपको दिए गए हैं, वह कार्यक्रम वहाँ भी दिए गए हैं, पर आने वाले समय में अब किसी भी देश को छोड़ेंगे नहीं और यहाँ हिंदुस्तान में भी हम किसी भी प्रांत को नहीं छोड़ेंगे। प्रांत ही नहीं, बल्कि हम किसी भी घर को नहीं छोड़ेंगे जहाँ गुरुजी के विचार न पहुँचें। वह पहुँचेंगे हर हालत में पहुँचेंगे, चाहे आप सहयोग देना अथवा मत देना यह आपके ऊपर है। कोई एक आदमी सहयोग देगा या नहीं देगा, देखा जाएगा।

अरे बाबा! इतना बड़ा मिशन है। आप क्या कह रहे हैं? आपने देखा है मिशन कितना बड़ा है? आपने सुना-ही-सुना है। आप तो इतने बैठे हैं, उतने से ही समझ रहे होंगे कि इतना ही बड़ा है, अरे! लाखों-करोड़ों व्यक्ति हमारे साथ हैं। आज हम कह दें तो मरने के लिए भी तैयार हो जाएँगे, ऐसे-ऐसे होनहार बच्चे हैं हमारे साथ। किसी की हम कामना नहीं करते कि कोई बच्चा मरे, काहे को मरे, पर मैं तो यह कहती हूँ कि हमारे पदचिह्नों पर चलने के लिए, हमारे साथ चलने के लिए हर व्यक्ति आमादा है, आपको भी आमादा होना चाहिए। जो अभी आपके यहाँ अश्वमेध यज्ञ होंगे, जिनको कि तारीखें दे दी गई हैं, आपका कर्त्तव्य होता है कि आप मिल-जुल करके कार्यक्रम कीजिए।

संगठित रहकर काम करें

आप यह मत करना कि हम तो फलानी जगह के थे साहब! हमको तो मिला नहीं, अमुक जगह को मिला तो हम क्यों जाएँ। नहीं साहब! वह पूरे प्रांत का है। कुछ बच्चों ने जब मुझसे यह कहा तो मैंने कहा कि नहीं, खबरदार! मुझसे तू यह मत कहना, वरन यह कहो कि माताजी हम जाकर के इसमें सहयोग दें, तो तुम्हारी तारीफ है। इसमें क्या बात है कि अरे फलानी जगह दे दिया, हमको नहीं दिया, अरे! अगले वर्ष तुझे भी दे देंगे कहाँ भागा जा रहा है, देखेंगे तू कितना करेगा, कर लेना।

अभी कुछ हमने सोचकर ही फेर-बदल किया होगा ऐसे क्यों नहीं समझता है। कोई-न-कोई खास वजह होगी, उसमें कुछ-न-कुछ, कोई-न-कोई रहस्य छिपा होगा, जिसकी वजह से हम नहीं दे रहे हैं। फिर तुम्हें दे देंगे तब कर लेना। अब तो जहाँ जो दिया गया है, सब मिलकर के काम करो। झाड़ू जो होती है, जो बुहारने के काम आती है, उसकी सींकें जब इकट्ठी कर लो तो सारे कूड़े-कबाड़े को बुहार देगी और अकेली-अकेली सींक क्या कर सकती है? कुछ नहीं कर सकती।

संगठित होकर रहें

गुरुजी ने इसको परिवार का रूप दिया है— गायत्री परिवार, युग निर्माण योजना, युग निर्माण परिवार। उन्होंने परिवार का रूप दिया है, फिर आप व्यक्ति विशेष की तरफ क्यों जाते हैं। व्यक्ति विशेष की ओर मत जाइए, आप यह मत कहिए कि साहब! यह तो पटना का कार्यक्रम था।

पटना में दिया गया है तो सारे जितने भी बिहार के हैं, बिहार वालों का कर्त्तव्य है कि सारे लोग मिल करके काम करो, चलो माँ को सफल बनाने के लिए तन से, मन से और धन से लग जाओ, जुट जाओ।

अरे साहब! आपने तो वहाँ दे दिया बड़ौदा, गुजरात में, हमको तो आपने नहीं दिया। अरे! तुझको नहीं दिया तेरे प्रांत को तो दिया है, चल पूरे प्रांत का है। यह केवल बड़ौदा का नहीं है, रजनीकांत का नहीं है और महेश्वर बाबू का नहीं है। पूरे गुजरात का है। आप सब मिल-जुलकर काम करिए, वह भी काम करेगा। आप भी काम करिए।

यह पूरे महाराष्ट्र का कार्यक्रम है, पूरे मध्य प्रदेश का कार्यक्रम है। यह नहीं है कि नहीं साहब! हमको तो कोरबा का दे दिया, बिलासपुर को दिया ही नहीं, पहले तो तिलक हमारा ही किया था। अरे! हमने पहले तिलक कर दिया था, अब हम ही तो कह रहे हैं, अब हम ही मना कर रहे हैं। अरे! यह क्या कह दिया आपने, आप मना क्यों कर रही हैं? आपने तिलक क्यों किया था? तिलक किया तो तेरी किसी अच्छाई के लिए किया था।

अब हमने दूसरे को दे दिया है तो दे दिया है हमारी इच्छा, हम चाहे जिसको देंगे तुम्हें तो सबको मिल करके काम करना चाहिए। मिल-जुलकर काम कीजिए। एक हो करके काम करिए, संगठित होकर के काम करिए, भाई-भाई मान करके काम करिए, पिता-पुत्र बन करके काम करिए, आप मिल करके काम करिए। यही मुझे आपसे आयोजन संबंधी बातें कहनी थीं, इसकी बहुत बड़ी व्यवस्था आपको करनी पड़ेगी।

सामर्थ्यवान बनें

पहले ही मैं आपसे निवेदन कर चुकी हूँ कि खान-पान से लेकर कैसे आप व्यवस्था करेंगे। इसमें सब जुट जाएँगे तो कई दिमाग जब उसमें लग जाएँगे तो सही काम होगा। आप एक समिति बनाइए और उस समिति को लेकर के बैठिए। आपका दिमाग खुलेगा।

हम तो यह समिति बनाने जा रहे हैं कि हर शक्तिपीठ का निरीक्षण करो कि कैसे चल रही है कि नहीं चल रही है। कहीं तो झाड़ू भी नहीं लग रही है, जाले लटक रहे हैं, जाने कैसे सप्ताह में एक दिन आरती हो जाती है। वहाँ क्या है कि प्रज्ञापीठ को नहीं खोलते। कथा तो खूब कहेंगे और उस कथा में यह नहीं बताएँगे कि शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ क्या होती है।

वह तो तुम्हारी उदरपूर्ति का साधन होती है। तुम चाहे कथा कहो, चाहे भागवत कहो, पर वहाँ गायत्री माता रो रही हैं और कह रही हैं कि इसमें हमें कैद कर दिया, इसमें हमें बैठाल दिया, पर यह भी नहीं बनता कि झाड़ू तो लगा दें।

यह सारा-का-सारा हिम्मत और श्रद्धा के ऊपर टिका हुआ है। हमारे अंदर श्रद्धा नहीं होगी और हमारे अंदर हिम्मत नहीं रहेगी तो हम दो कौड़ी के व्यक्ति हैं। दो कौड़ी के व्यक्ति नहीं होना चाहिए, सामर्थ्यवान होना चाहिए। सामर्थ्यवान हों, बलवान हों, आप हिम्मतवाले हो, शक्तिवान हो, आपके लिए कार्यक्रम को सफल बनाना कठिन नहीं होना चाहिए।

जैसा कि मैंने अभी आपसे कहा है कि आपके शपथ का नंबर आवेगा। अभी आपको शपथ दिलाई जाएगी। यह मिट्टी बड़ी पवित्र मिट्टी है। यह वह

मिट्टी है, जिस तरीके से रावी के तट पर शपथ ली गई थी कि स्वतंत्रता आंदोलन के लिए हम शपथ लेते हैं कि हम स्वतंत्रता ला करके ही रहेंगे।

इसी तरीके से बंगाल में आनंदमठ नामक एक उपन्यास लिखा गया था। उस उपन्यास को पढ़ करके ही लोगों में इस तरीके से स्वतंत्रता आंदोलन की लहर आई कि समूचा जनमानस उमड़ पड़ा, जिसमें सुभाषचंद्र बोस भी थे और महर्षि अरविंद भी शामिल थे।

उसमें छोटे-बड़े सभी शामिल थे और देखते-ही-देखते स्वतंत्रता हमको मिल गई। लेकिन मिली कब? हमको ऐसे ही स्वतंत्रता नहीं मिल गई, इसमें बड़ी-बड़ी कुरबानियाँ दी गई हैं, बलिदान किया गया है।

लड़के गा रहे थे कि इस माटी के लिए भगत सिंह फाँसी पर चढ़ गए थे। इस माटी की सौगंध गुरुजी ने खाई थी कि मैं अपनी मातृभूमि की शपथ लेता हूँ कि जब तक स्वतंत्रता नहीं मिल जाएगी, तब तक मैं चैन से नहीं बैठूँगा। और फिर वह शपथ आगे चलती हुई चली गई कि मैं सौगंध खाता हूँ कि अपने देश के लिए, अपने समाज के लिए, मैं सारे विश्व के लिए जीवन भर लगा रहूँगा और वह उन्होंने पूरा किया।

भावनाएँ जगाएँ

यह मखौल नहीं है, यह मिट्टी नहीं है, यह बड़े सोने और हीरे-जवाहरात की गढ़ है। यह वह मिट्टी है, जो सिर से लगाई जानी चाहिए, हृदय से लगानी चाहिए कि इसमें वह संत और सपूत पैदा हुआ।

इसमें और भी लोग पैदा हुए, लेकिन वह ऐसे ही चले गए, जैसे अन्य प्राणी जाते हैं, लेकिन उन्होंने तो कमाल ही कर दिया। अरे वाह रे संत! उनको लाखों प्रणाम है, जिनने आध्यात्मिक क्षेत्र में और साहित्य क्षेत्र में इतना काम किया हो। उन्होंने अपने वजन से ज्यादा साहित्य लिखा, छह घंटे नित्यप्रति उनकी उपासना होती थी।

लोग कहते हैं कि साहब! हमको तो उपासना के लिए समय ही नहीं मिलता। बेटे, कभी नहीं मिलेगा। आपको और किसी काम के लिए मिलेगा, जनसंपर्क के लिए मिलेगा? नहीं साहब! हमको कहाँ समय मिलता है।

माताजी हम तो नौकरी से आते हैं—5.30 बजे छुट्टी हो जाती है, तब तक थककर चूर हो जाते हैं। फिर खाते-पीते हैं, 9.30 बजे तक जरा मनोरंजन-सा होता है, फिर सो जाते हैं। हाँ बेटा, जिंदगी भर ऐसे ही सोते रहेंगे, ऐसे ही उठते रहेंगे। कभी तुम्हारे अंदर कोई हौसला आ जाएगा क्या? नहीं आवेगा, क्योंकि इस देश के लिए और समाज के लिए आपके अंदर जो उत्साह उमड़ना चाहिए, वह उमड़ता ही नहीं है। यदि उत्साह और उमंगपूर्वक भावनाएँ हों तो फिर हर काम के लिए समय निकल आता है।

गुरुजी के पास समय निकलता था कि नहीं निकलता था? लेखन भी करते थे, पत्र व्यवहार भी करते थे, अब तो स्थिति यह है कि पत्र इतने बढ़ गए जिससे कि इतने व्यक्ति हमें लगाने पड़े। मिशन बढ़ रहा है तो पत्र व्यवहार भी बढ़ रहा है। मैं बोलती जाती थी और वे लिखते जाते थे; क्योंकि मेरी राइटिंग जरा ठीक नहीं है, पर पढ़ने में ठीक है। मैं पत्रों को पढ़ती जाती थी, वे लिखते जाते थे। वे रोज पत्र लिख करके फिर गायत्री तपोभूमि जाते थे।

वहाँ लोगों से मिलते-जुलते थे, फिर दोपहर को आते थे। फिर उपासना, फिर भोजन और फिर गायत्री तपोभूमि जाना और फिर शाम को 4.00 बजे आना, जरा आप हिसाब लगाइए तो सही कितना उन्होंने काम किया।

एक मिनट का सवा हिस्सा भी उन्होंने कभी गँवाया नहीं। कभी गपशप में? नहीं, कभी नहीं

गँवाया। हमेशा उनका मिशन-मिशन-मिशन, सारे विश्व का कल्याण चलता रहता था। कभी थोड़ी देर के लिए घूमने भी जाते थे, तब भी यही सब चलता रहता था।

मैं कहती थी कि साहब! घूमने आए हैं कि अभी भी आपके साथ मिशन लदा है, उसे थोड़ी देर के लिए तो उतारो। नहीं, फिर वही बातें होती थीं, खाना खाते वक्त में भी। मैं यह कहा करती थी कि यह बताइए साहब! आप भोजन कर रहे हैं या क्या कर रहे हैं? आप भोजन करते हुए भी इतनी बात करते हैं।

कभी-कभी उन्हें ठस्का लग जाता था तो मैं कहती थी कि देखो ठस्का लग जाएगा, आप इसके बाद बात कर लेना। मैं तो बात नहीं करूँगी, मैं तो भोजन करती हूँ तो भोजन में ध्यान लगाऊँगी। मैं ही जरा हँस जाती थी और कहती थी कि पहले आप भोजन कर लीजिए, पीछे बात कर लीजिएगा। उनको भोजन करने में भी बातें ही करना और सारे विस्तार से वही बातें करना कि किस तरीके से यह मिशन बढ़े और कैसे विश्व-कल्याण के लिए हमको क्या करना चाहिए ।

माटी की शपथ

समय-समय पर उन्होंने लोगों से अनुष्ठान कराए और स्वयं भी उन्होंने तपश्चर्या की। समय-समय पर सन् 1962 से लेकर अन्य समय में, जैसे- जो अष्टग्रही योग आया था, उस समय लोगों से अनुष्ठान कराए थे।

स्काईलैब जब गिरने वाला था, उस समय भी उन्होंने विशेष तपश्चर्या की थी और लोगों से कराई थी। समय-समय पर उन्होंने विशेष तपस्या की, हिमालय पर भी चार बार गए। उनके पास समय निकला कि नहीं निकला? उनके पास समय निकला। आपके पास समय है? बिलकुल आपके पास समय है।

इस माटी की मैं आपको याद दिला रही हूँ, यह माटी बड़ी पवित्र है। यदि आप आज इस माटी की सौगंध-शपथ लेते हैं तो इसका निर्वाह करना, इसको पूजा के स्थान पर रखना और रोज माथे से लगाना और माथे से लगा करके यह प्रेरणा ग्रहण करना कि जो कार्य गुरुजी ने किया था, अब उन कार्यों में हमें हिस्सा बँटाना है, हमें आगे बढ़ाना है। जिस तरीके से गुरुजी ने कार्य किया था, उसी तरीके से हम भी करेंगे तो आप गुरुजी के बच्चे हो जाएँगे।

शेर का बच्चा शेर

बच्चे तो आप अभी भी हैं, पर देखो शेर का बच्चा शेर होता है, बकरी नहीं होता। बकरी कहीं होता है? नहीं, बकरी नहीं होता शेर का बच्चा शेर होता है और संत का बच्चा? उसको भी संत होना चाहिए।

ऋषि के बच्चे को ऋषि होना चाहिए, उसका अनुकरण करना चाहिए न कि पिल्ले के तरीके से रहना चाहिए। भेड़ों के तरीके से नहीं रहना चाहिए। आप ऋषि की संतान हैं न, तो उसके लिए चलेंगे, अपनी माँ के पदचिह्नों पर चलेंगे।

माँ गोद में तो खिलाती है, पर उस गोद का सम्मान भी तो रखो, उसको आप पहचानो भी तो सही। उस हृदय को आप नहीं पहचानेंगे और उसकी लाज आप नहीं रखेंगे तो फिर आप बेटे कैसे हो गए? बेटा तो अपने माँ-बाप के वचनों पर, पदचिह्नों पर चलता है न, तो बेटे आप गुरुजी के और हमारे पदचिह्नों पर चलना, आप इस माटी की कसम खा रहे हो।

अभी मैंने जो निवेदन किया था कि गुरुजी ने इस मिट्टी को हाथ में लेकर के जो शपथ ली थी, आजीवन उसका निर्वाह करते हुए चले गए। आप भी आज जो शपथ ले रहे हैं उस पर बने रहना, यह मत करना कि कल कायरों में आपकी गिनती

गिनी जावे तो आप रख दीजिए। आप बिलकुल शपथ मत लीजिए।

मेरा विचार तो विशुद्ध रूप से आपको उस ओर दिग्दर्शन कराने का है, जिस ओर आपको चलना चाहिए। आपको ठगों के झाँसे में नहीं आना चाहिए।

चलो आपको एक कहानी सुनाती हूँ। हँसा भी देती हूँ, नहीं तो कहेंगे कि माताजी को हँसाने का काम नहीं आता। अच्छा तो हँसाना भी सुन लो।

तीन ठग थे और एक था ब्राह्मण। ब्राह्मण को कुछ सूझी तो उसने एक बकरी ले ली और उसे कंधे पर रख लिया। जो ठग थे वो बारी-बारी से बोले कि यार! बकरी को तो ब्राह्मण लिए जा रहा है, फिर हमारा काम कैसे बनेगा? हम कैसे खाएँगे? यह तो ले जा रहा है। उन्होंने कहा कि पंडित जी आप क्या ले जा रहे हैं? बकरी ले जा रहे हैं और क्या ले जा रहे हैं।

उसने कहा कि यह बकरी नहीं है। तो कौन है? अरे यह तो कुत्ता है। दूसरा आया और बोला कि पंडित जी क्या ले जा रहे हो? बकरी है। उसने कहा कि बकरी नहीं, यह तो कुत्ता है, जिसे आप टाँगे फिर रहे हो। अब तीसरा आया और बोला पंडित जी! आप कहाँ से आ रहे हैं? अरे फलानी जगह से आ रहे हैं।

उसने कहा कि यह आपके कंधे पर क्या है? अरे कंधे पर हम बकरी ले जा रहे हैं। उसने कहा कि बकरी नहीं, यह तो कुत्ता है, कुत्ता। अब पंडित जी घबराए, क्योंकि सब एक स्वर से कह रहे हैं कि कुत्ता है, तो शायद इसमें कोई भूत-प्रेत होगा।

तो उन्होंने उसको फेंक दिया और भूत-भूत करके भागते हुए पंडित जी अपने घर में घुस गए और वह तीनों जो ठग थे, उसको उठा करके चंपत हो गए और बकरी को खा-पीकर के अलग कर दिया।

मैंने यह कहानी इसलिए बताई है कि यह बिलकुल आपके ऊपर लागू होती है कि आप जगह-जगह नहीं, एक ही जगह पर रहें। एक ही जगह पर आपका ध्यान केंद्रित होना चाहिए, एक ही जगह आपकी निष्ठा होनी चाहिए।

नहीं साहब! हम तो डाल-डाल और पात-पात के बनेंगे, नहीं साहब! आप डाल-डाल और पात-पात के मत बनिए। फिर आप बहक जाएँगे, जैसे कि पूजा की चौकी पर अनेक देवी-देवता रखे रहने से होता है।

गुरुजी के साथ मैं बहुत जगह गई हूँ। मैंने तो और कुछ नहीं देखा, न किसी की गरीबी देखी न अमीरी देखी, एक बार जरूर किसी की पूजा की चौकी देखी। मैंने देखा कि उसकी पूजा की चौकी पर शंकर जी से लेकर और भैरव जी से लेकर चंडी माता और जाने कौन-कौन माता हैं और जाने क्या-क्या रखा है। उसमें सबके लाल-लाल तिलक लगे थे। मैंने कहा कि धन्य है पुजारी तेरी भक्ति। तेरी भक्ति को क्या कहूँ, तेरा जैसा भक्त कोई और दुनिया में पैदा हुआ है क्या? क्या स्वरूप बिगाड़ रखा है सारे देवी-देवताओं का।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय

किसी एक पर तेरी निष्ठा होनी चाहिए— "एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय"। सब साधुओं को बुला लो कि तू भी आजा, तू भी मेरे यहाँ कथा कह जा, पर किसी से कुछ नहीं मिलता, खाली हाथ के खाली हाथ रह जाते हैं। खाली हाथ के खाली हाथ क्यों रहना चाहिए? जहाँ अपनी निष्ठा है, वहीं केंद्रित कीजिए।

हमें नहीं मालूम है कि आपकी निष्ठा कहाँ है, पर जहाँ भी है, वहाँ एक तरफ ही तो रहनी चाहिए। आप हिंदू हो जाओ या मुसलमान हो जाओ, एक तो हो जाओ, नहीं साहब! हम सब तरफ से लेंगे। सब तरफ मत चलिए,आप एक तरफ से चलिए।

गुरुजी एक तरफ ही चले थे। गुरु और गायत्री माता बस, दो के अलावा उन्होंने कभी कुछ नहीं देखा। गंगा को देखा तो गंगा जैसी शीतलता उनके अंदर आती हुई चली गई। शंकर जी को देखा तो दूसरों के लिए जो हलाहल था, उसको खुद पीते हुए चले गए। नहीं साहब! शंकर जी को भाँग-धतूरा खिलाया और उनकी जेब में हाथ डाला और मालामाल हो गए।

बेटे! शंकर जी बहुत उदार तो हैं, पर भाँग, धतूरे पर नहीं देते हैं, श्रद्धा-निष्ठा पर देते हैं। वह देते इसलिए हैं कि आप परहित के लिए इसी तरीके से चलिए, जिस तरीके से आपको चलना चाहिए, जैसे कि गुरुजी परहित के लिए चले हैं। अपने हित के लिए नहीं चले, वह परहित के लिए चले हैं। अपने हित के लिए चले होते तो शायद एकाध गाड़ी हो गई होती, कोई मकान हो गया होता, कोई एक कोठी मोटी हो गई होती, दो-चार-छह नौकर-चाकर हो गए होते। इतने में ही मामला खतम हो जाता, पर बेटे वे परहित के लिए चले और सारे विश्व के कल्याण के लिए चले तो उनके वैभव का क्या ठिकाना।

जैसा मैंने निवेदन किया था कि दस साल में जो कार्य नहीं हुआ, वह दो साल में हो गया। सूक्ष्म और कारणशरीर में जाने से उनकी इतनी व्यापकता बढ़ती हुई चली गई कि आप उसका अनुमान नहीं लगा सकते।

जो भीड़ हमारी कभी गुरु पूर्णिमा पर या वसंत पर्व पर रहती थी, वह आमतौर से रोज रहती है। इतनी भीड़ क्यों है? यह उस सूक्ष्मसत्ता की प्रेरणा है, उसका झकझोरना है। आज प्रत्येक व्यक्ति के अंदर वह प्रेरित करते हुए जा रहे हैं और हर व्यक्ति को ऊँचा उठाते हुए जा रहे हैं।

इतना जबरदस्त तूफान आ रहा है कि इस तूफान के साथ जो भी कोई चलेगा, वह लाभ उठा लेगा। यह तो बहती हुई गंगा है, जो गंगा में जाएगा और गोते लगाएगा उसी को फल मिलेगा। जो समुद्र में गोते लगाएगा, हीरा-मोती पाएगा और जो किनारे पर ही बैठा रहेगा, वह क्या पा सकता है? वह तो घोंघे पावेगा, वह हीरा-मोती कैसे पा सकता है। हीरा-मोती पाना है तो फिर उसके तरीके से आप चलिए।

हीरा-मोती का मतलब है—हमारे सुसंस्कार, सिद्धांत, भावनाएँ, निष्ठा और श्रद्धा। हमारा मतलब है कि आप स्वयं बनिए, अपने परिवार को बनाइए, समाज को बनाइए और सारे विश्व को बनाइए। किस तरीके से आप बनाएँगे, यह सारा मार्गदर्शन पहले भी हमारे लड़के दे चुके हैं, हम भी दे रहे हैं और बाहर आपको साहित्य से मिल जाएगा।

एक लड़का राजस्थान का था। बहुत दिन पहले आया था। उसने कहा कि माताजी! मैं सन् 1960 से जुड़ा हूँ और सन् साठ से मैं अखण्ड ज्योति पत्रिका को पढ़ता हूँ। मैं एक-एक अक्षर को पढ़ता हूँ और उस अक्षर को पीता हुआ चला जाता हूँ।

क्योंकि लड़कों ने मुझे यह रिपोर्ट दी थी कि माताजी! एक सज्जन आए हैं, जो इतना बढ़िया बोलते हैं कि कमाल है। मैंने कहा अच्छा कौन-सा व्यक्ति है? मैंने उसे अपने पास बुलाया और कहा कि मैंने तेरी बहुत तारीफ सुनी है।

उसने कहा कि माताजी! मेरी तारीफ नहीं है, यह गुरुजी की तारीफ है। मैं तो उनके लेखों को पढ़ता हूँ और सारे लेखों को अपने अंदर उतार लेता हूँ और वही मैं बोलता हूँ, दूसरा कहाँ से बोलूँगा। मैं अपनी तरफ से एक शब्द भी नहीं बोलता। यदि बोलता हूँ तो जैसे कि टेप रिकॉर्डर में कचरा फँस जाता है, समझ लो वैसे ही मेरी वाणी और भाषा लड़खड़ा जाती है। खाली मैं उनके लेखों को बोलता हूँ।

बेटे ! वह तो बड़ा जबरदस्त बोलने वाला हो गया, आप भी हो जाएँगे आप पढ़िए तो सही। आप केवल पन्ना पलटकर देखते हैं, अंत:करण से नहीं पढ़ते। जिस दिन आप अंत:करण से पढ़ना शुरू करेंगे न, उस दिन देखना कि आप बिलकुल बदल जाएँगे। काया आपकी ऐसी ही रहेगी, लेकिन आप पूरा बदल जाएँगे, आपका आचरण बदल जाएगा, आपका व्यवहार बदल जाएगा, आपका चिंतन बदल जाएगा और जब हमारा चिंतन बदल जाता है तो चरित्र बदल जाता है, व्यवहार बदल जाता है और वातावरण भी बदलता हुआ चला जाता है।

जहाँ भी आप रहेंगे, वहाँ आपका स्वच्छ और पवित्र वातावरण बनता हुआ चला जाएगा। इन शब्दों के साथ बात को खतम करती हूँ। अब शपथ ग्रहण का समय आ रहा है, अब कर्मकांड कराएँगे, फिर आप को शपथ दिलाई जाएगी।

॥ ओम् शांति ॥

गुरु नानकदेव सात्त्विक जीवन जीते तथा प्रभु-स्मरण करते थे। एक बार उनके पास एक व्यक्ति आया और बोला—"बाबा! मैं चोरी तथा अन्य अपराध करता हूँ। मेरा जीवन सुधर जाए, ऐसा कोई उपाय बताइए।" गुरु नानक जी ने कहा—"तुम चोरी या अन्य गलत काम करना बंद कर दो, तो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।" वह व्यक्ति उन्हें प्रणाम करके लौट गया। कुछ दिनों बाद वह फिर आया और बोला—"बाबा गलत काम छूट नहीं रहे।" इस पर गुरु नानक जी बोले—"भैया! तुम अपने द्वारा किए सभी गलत कामों के बारे में दूसरों को बता दिया करो।" चोर ने अगले दिन चोरी की, लेकिन उसकी दूसरों को बताने की हिम्मत ही नहीं हुई। उसे लगा कि लोग उससे घृणा करने लगेंगे। उसने सोचा कि दूसरों को बताने से तो यही बेहतर है कि मैं चोरी ही करना छोड़ दूँ। कुछ दिनों बाद उसने गुरु नानक जी को जाकर बताया—"बाबा आपके सुझाए तरीके ने मुझे अपराधमुक्त कर दिया है। अब मैं मेहनत की कमाई से गुजारा करता हूँ।"

विश्वविद्यालय परिसर से –244

जीवन चेतना के उत्सव का केंद्र विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में हाल ही में राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् की निरीक्षण प्रक्रिया सफलतापूर्वक संपन्न हुई। तीन दिवसीय इस निरीक्षण के दौरान नैक टीम ने विश्वविद्यालय के शैक्षणिक, प्रशासनिक, शोध, एवं सामाजिक क्रियाकलापों का गहराई से अवलोकन किया।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय परिवार ने एकात्मता और उत्साह के साथ अपनी गतिविधियों की प्रस्तुति दी। निरीक्षण के दौरान नैक टीम ने विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों, शोध प्रयोगशालाओं, पुस्तकालय, योग एवं स्वास्थ्य केंद्र, संस्कारशील वातावरण और सामाजिक सेवा केंद्रों का सजीव अनुभव किया।

समापन सत्र में नैक टीम ने विश्वविद्यालय की शैक्षणिक गुणवत्ता और सांस्कृतिक विशिष्टता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। नैक टीम के अध्यक्ष ने अपने वक्तव्य में कहा कि यह विश्वविद्यालय केवल एक शिक्षा संस्थान नहीं, अपितु एक ऐसी प्रयोगशाला है, जहाँ ज्ञान के साथ जीवनमूल्यों, नैतिकता और संस्कारों का समावेश किया जाता है।

उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा युवाओं में जागरूकता, संवेदनशीलता और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व भाव विकसित करने के प्रयासों को विशेष रूप से सराहा। निरीक्षण के दौरान नैक टीम ने यह अनुभव किया कि विश्वविद्यालय की स्थापना केवल शैक्षणिक विस्तार के लिए नहीं, अपितु एक दूरदर्शी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण को मूर्तरूप देने हेतु की गई है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपिता पूज्य गुरुदेव का यह सपना था कि शिक्षा केवल नौकरी के लिए नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के समग्र उत्कर्ष का साधन बने। उनके विचारानुसार शिक्षा का उद्देश्य जीवन-निर्माण, राष्ट्र-निर्माण और युग-निर्माण होना चाहिए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय में न केवल आधुनिक विषयों का अध्ययन कराया जाता है, बल्कि छात्रों को जीवनमूल्यों, संयम, सेवा और साधना से भी जोड़ा जाता है।

नैक टीम ने विशेष रूप से यह उल्लेख किया कि विश्वविद्यालय के वातावरण में अध्यात्म और आधुनिकता का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। छात्र नित्य प्रार्थना, यज्ञोपासना, ध्यान, एवं सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं, जिससे उनमें न केवल बौद्धिक परिपक्वता आती है, बल्कि वे एक सशक्त और संस्कारित नागरिक के रूप में विकसित होते हैं। विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे अनेक नवाचारात्मक प्रकल्प जैसे ग्रामीण उत्थान, व्यसन मुक्ति, महिला सशक्तीकरण और पर्यावरण संरक्षण को भी टीम ने अनुकरणीय बताया।

प्रतिकुलपति जी ने नैक टीम का हार्दिक आभार प्रकट करते हुए कहा कि यह विश्वविद्यालय पूज्य गुरुदेव की तप-साधना का प्रतिफल है और यहाँ शिक्षा को एक साधना के रूप में अपनाया जाता है। नैक निरीक्षण के सफल समापन से विश्वविद्यालय परिवार में नई ऊर्जा और उत्साह का संचार हुआ है। यह विश्वास व्यक्त किया गया

कि प्रतिकुलपति जी द्वारा दी गई प्रशंसा न केवल विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ाएगी, बल्कि भारतीय उच्च शिक्षा में एक मूल्यनिष्ठ और संस्कारपूर्ण शिक्षा-प्रणाली का आदर्श प्रस्तुत करेगी।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, जो अपनी अद्वितीय-आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा-प्रणाली के लिए जाना जाता है, में नवीन सत्र 2025-2026 के लिए हाल ही में प्रवेश परीक्षा का सफल आयोजन किया गया। विश्वविद्यालय परिसर में आयोजित इस परीक्षा में देश भर से अनेकों प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों ने भाग लिया।

प्रवेश परीक्षा का आयोजन विश्वविद्यालय के उच्च शैक्षणिक मानकों और मूल्य-आधारित शिक्षा के अनुरूप किया गया। परीक्षा में शैक्षणिक ज्ञान के साथ-साथ अभ्यर्थियों की वैचारिक स्पष्टता, नैतिक मूल्यों एवं व्यक्तित्व का भी मूल्यांकन किया गया।

इस वर्ष बड़ी संख्या में आवेदन प्राप्त हुए, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि युवाओं में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में अध्ययन करने की गहरी अभिलाषा है। हालाँकि, सीमित सीटों के कारण केवल कुछ ही चुनिंदा विद्यार्थियों को प्रवेश का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो सका। चयनित विद्यार्थियों ने अपनी योग्यता, समर्पण और मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का परिचय दिया है।

विश्वविद्यालय प्रशासन ने सभी प्रतिभागियों को उनके प्रयासों के लिए शुभकामनाएँ दीं और आशा व्यक्त की कि जो छात्र इस बार चयनित नहीं हो सके, वे भविष्य में और भी उत्कृष्ट तैयारी के साथ आगे आएँगे। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की यह प्रवेश परीक्षा न केवल एक शैक्षणिक प्रक्रिया थी, बल्कि यह विश्वविद्यालय के मूलभूत उद्देश्य चरित्र निर्माण, राष्ट्र-निर्माण एवं विश्व मानवता की सेवा की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम भी सिद्ध हुई।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आध्यात्मिक और प्रेरणाप्रद वातावरण में ज्ञानदीक्षा समारोह का आयोजन संपन्न हुआ। यह समारोह विश्वविद्यालय की एक विशिष्ट परंपरा है, जिसके माध्यम से नवप्रवेशी विद्यार्थियों को न केवल शिक्षा के क्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा दी जाती है, बल्कि उन्हें भारतीय संस्कृति, जीवनमूल्यों और सेवा के आदर्शों से भी जोड़ा जाता है।

इस अवसर पर बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय के कुलाधिपति महंत बालकनाथ योगी जी तथा पेट्रोलियम एवं ऊर्जा अध्ययन विश्वविद्यालय, देहरादून के कुलाधिपति डॉ० सुनील राय जी की गरिमामयी उपस्थिति रही। दोनों महानुभावों ने विद्यार्थियों को अपने प्रेरक वक्तव्यों से जीवन में मूल्यनिष्ठ शिक्षा, सेवा-भावना और आत्मिक विकास की दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया। उनका स्वागत विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अत्यंत आत्मीयता के साथ किया और उन्हें विश्वविद्यालय की संस्कृति से अवगत कराया।

महंत बालकनाथ योगी जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि वर्तमान समय में शिक्षा केवल नौकरी प्राप्त करने का साधन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व के समग्र विकास का माध्यम होनी चाहिए। देव संस्कृति विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को जिस आध्यात्मिक और नैतिक आधार पर शिक्षित कर रहा है, वह देश में एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है।

डॉ० सुनील राय जी ने विश्वविद्यालय के शैक्षणिक वातावरण और मूल्यपरक शिक्षा की सराहना करते हुए कहा कि इस परिसर में केवल

ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला सिखाई जाती है—यह एक विश्वविद्यालय नहीं, एक साधना स्थल है। इस समारोह में विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रद्धेय डॉ० प्रणव पंड्या जी ने वीडियो संदेश के माध्यम से विद्यार्थियों को शुभकामनाएँ और आशीर्वाद प्रदान किए।

उन्होंने कहा कि ज्ञानदीक्षा एक आत्मिक प्रक्रिया है, जिसमें विद्यार्थी केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक रूप से भी समृद्ध होते हैं। यहाँ आरंभ हो रही यह यात्रा, उन्हें चरित्रवान, विवेकशील और राष्ट्र के प्रति समर्पित नागरिक बनाएगी। समारोह में कुलपति श्री शरद पारधी जी, कुलसचिव, सभी प्रशासनिक अधिकारी, विभागाध्यक्षगण तथा प्राध्यापकगण उपस्थित रहे और उन्होंने इस आयोजन की सफलता में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

समारोह का वातावरण वैदिक मंत्रोच्चार, यज्ञ, दीप प्रज्वलन और सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के माध्यम से अत्यंत भावपूर्ण एवं संस्कारित रहा। सैकड़ों नवप्रवेशी विद्यार्थियों ने ज्ञानदीक्षा की इस पावन प्रक्रिया में भाग लेकर शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य आत्मविकास, समाजसेवा और जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा को अपने जीवन का आधार बनाने का संकल्प लिया। यह आयोजन न केवल एक शैक्षणिक यात्रा की शुरुआत थी, बल्कि जीवन की गहन दिशा और चेतना का उत्सव भी सिद्ध हुआ। ❑

एक बार देवराज इंद्र को अपने इंद्र पद पर आसीन होने का अभिमान हो गया, सो भगवान विष्णु ने उनके दर्प का शमन करने के लिए देवर्षि नारद को भेजा। देवर्षि नारद देवराज को साथ लेकर भ्रमण को निकले। दोनों आकाशमार्ग से जा रहे थे कि देवर्षि नारद धरती पर रेंगते चींटियों के एक समूह को देखकर हँसने लगे। उनको इस तरह हँसते देखकर इंद्र को उत्सुकता हुई। उन्होंने देवर्षि से उनके हँसने का कारण पूछा।

देवर्षि नारद बोले—"देवराज! ये सब चींटियाँ किसी-न-किसी जन्म में इंद्र पद पर आसीन रही हैं और आज उनको इस तरह एक मनुष्येतर योनि में भटकते देखकर मुझको प्रकृति की लीला पर हँसी आ गई।"

इंद्र आश्चर्य से बोले—"ऐसा कैसे संभव है देवर्षि?" देवर्षि नारद बोले—"मात्र यही संभव है देवराज! इस सृष्टि में आत्माएँ कर्मानुसार गति करती हैं और उसी के अनुसार बड़े पदों को अथवा निकृष्ट योनियों को प्राप्त करती हैं। यही प्रकृति की लीला है, इसे आप कर्म का कालचक्र भी कह सकते हैं। इसी में गति करते-करते कभी कोई इंद्र बनता है तो कभी कोई चींटी। मात्र अहंकारमुक्त होकर कर्म करने से ही इस चक्र से मुक्ति संभव है।"

इंद्र का अहंकार यह सुनकर विगलित हो गया।

साधना शताब्दी–विशिष्ट लेखमाला

प्रकाशित प्रशासन

प्रकाशित प्रशासन नवयुग की स्थिति है। समय प्राचीन हो या अर्वाचीन—प्रशासन अपने बदलते स्वरूप में हर युग में रहा है। सेवा-सुविधा, सुरक्षा यही प्रशासन के दायित्व हैं, जिसे बीते युग में राजा और राजकर्मचारी मिलकर पूरा करते थे। वर्तमान युग की बदली हुई व्यवस्था में इसे जन-प्रतिनिधि, प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी मिलकर पूरा करते हैं। हर युग में इसके लिए एक बात अनिवार्य रही है—नागरिकों की समझ। नागरिकों की सही समझ के बिना हमेशा ही प्रशासन अपने दायित्वों की पूर्ति सही ढंग से नहीं कर पाता। प्रयास कितने भी और कैसे भी क्यों न किए जाएँ, पर नागरिकों के सम्यक-सहयोग के बिना प्रशासनिक दायित्वों व कार्यों का सही निर्वाह नहीं बन पड़ता। इसलिए नागरिकों को अपने नागरिक दायित्वों की सही-सही समझ बहुत जरूरी है।

प्रशासन में उच्चतम दायित्व सरकार का होता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह जनप्रतिनिधियों के द्वारा चलाई जाती है। इन जनप्रतिनिधियों का चयन-चुनाव स्वयं नागरिक एक निश्चित समयावधि के लिए करते हैं; जबकि प्रशासनिक अधिकारियों की परीक्षा-परीक्षण, चयन-प्रशिक्षण एवं नियुक्ति सरकार की सरकारी संस्थाएँ करती हैं। सामान्य व अन्य प्रशासनिक कर्मचारियों के विधि-नियम भी कुछ इसी प्रकार के हैं।

किसी का भी स्थान व स्थिति कोई भी क्यों न हो, परंतु उनकी सक्षमता-अक्षमता उनके व्यक्तित्व के गुणों पर आधारित होती है। अच्छे व्यक्तित्व वाले लोग सदा ही सक्षम होते हैं, जबकि बुरे व्यक्तित्व के लोग हमेशा ही अक्षम व दुःखदायी होते हैं। समय का कोई भी समयांश या समयभाग क्यों न हो, अच्छे-बुरे लोगों का संयोग-सुयोग हमेशा से बना रहा है।

बात जब प्रकाशित प्रशासन की की जा रही है; तो उसका अर्थ यही है कि यह व्यवस्था ऐसी बने, जिसमें प्रकाशित व्यक्तित्व के लोगों की बहुलता हो। अभी की स्थिति में अनेक कारणों से, ऐसा नहीं हो पा रहा है। चर्चे भ्रष्टाचार के होते हैं। नियमों के निरोध के बावजूद यह होता रहता है। पहले पायदान से लेकर ऊपर शिखर तक यह स्थिति दाल में नमक एवं दूध में शक्कर की तरह बनी हुई है।

दाल में नमक अलग से कहीं नजर नहीं आता, परंतु जीभ पर रखने पर पता चल जाता है कि दाल नमकीन है। यही स्थिति दूध में शक्कर की है। शक्कर अलग से दिखती नहीं है, लेकिन दूध चखने पर स्वाद साफ-साफ समझ में आ जाता है। इसमें दोषी कौन है? व्यक्ति या व्यवस्था, यह तय कर पाना थोड़ा कठिन है; क्योंकि कोई व्यक्ति जन्म से ऐसा नहीं होता, जैसा वह अब हो गया है। रही बात व्यवस्था की, वह हम सबके द्वारा ही बनाई हुई है। जब इसे हम सबने बनाया है, तो इसके बिगड़ेपन के अथवा सुधरेपन का दायित्व तो हमारा ही हुआ।

स्थितियाँ जो दिखती हैं, वे बड़ी विचित्र और विस्मयकारक हैं। प्रशासन में अगर भ्रष्ट आचरण की जड़ें ढूँढ़ें तो इनकी गहराई काफी ज्यादा मिलती है। प्राचीन ग्रंथों में संस्कृत साहित्य में भी इसका

हलका-फुलका उल्लेख मिल जाता है। अब यह बात अलग है कि वर्तमान में यह हलका-फुलका न रहकर काफी भारी-भरकम बोझ बन गया है। पहले जो शुकराना था, वह बाद में नजराना बनकर अब हकराना बन गया है। यानी कि पहले कभी लोग काम हो जाने के बाद अपनी खुशी से कुछ थोड़ा-सा धन कर्मचारियों को दे दिया करते थे। लेकिन बाद में काम होने से पहले इसे नजर किया जाने लगा या यों कहें काम करने से पहले इसकी माँग होने लगी, लेकिन अब यह शुकराना या नजराना नहीं रहा—अब यह कर्मचारियों व अधिकारियों का अधिकार या हक बनकर हकराना कहा जाने लगा है।

मुंशी प्रेमचंद्र की एक कहानी इस बारे में कही जाती है—'नमक का दरोगा'। इस कहानी में 'नमक के दरोगा' पद पर नियुक्त अधिकारी को उसके पिताजी भ्रष्टाचार से मिलने वाले धन को भगवान का प्रसाद कहकर उसे महिमान्वित करते हैं। वह कहते हैं कि नौकरी में प्रतिमास मिलने वाली तनख्वाह या सेलरी तो मनुष्य प्रदान करते हैं, लेकिन ऊपर से होने वाली आमदनी तो भगवान देता है। इसलिए इसे भगवान का प्रसाद समझकर स्वीकार कर लेना चाहिए। मुंशी प्रेमचंद्र की इस कहानी में व्यंग्य है। यह व्यंग्य जीवन-दृष्टि पर है, जीवन के दृष्टिकोण पर है। इसमें परिहास प्रकाश के अभाव पर है। कटाक्ष इस पर है कि देखो और समझो कि किस तरह आसुरी अँधियारा देखते-देखते हम सबके जीवन का आधार बन गया है।

इस अंधकार को घटाना-हटाना या मिटाना-प्रयास से नहीं, बल्कि प्रकाश से संभव है, जीवन-दृष्टि के परिमार्जन से संभव है। इस स्थिति का सारा दोष उस दृष्टिकोण का है; जिसने धन के प्रदर्शन को, महँगे वस्त्रों, आभूषणों, घर व गाड़ियों को बड़प्पन की परिभाषा बना दिया है। समस्या का समाधान तब होगा, जब समृद्धि के स्थान पर सद्गुणों को स्वीकारा जाएगा। हमारे देश में कभी सर्वत्यागी संन्यासी को, निर्धन फकीर को श्रेष्ठतम का सम्मान देने की बात कही और स्वीकारी गई थी; लेकिन अब तो लगता है कि कलियुग ने सभी के कल-पुरजे ढीले कर दिए हैं। अब तो संन्यासी-धर्माध्यक्ष सबसे बड़े धनवान हो गए हैं। वे भी अपने धन का प्रदर्शन करने लगे हैं। इसे अँधेरे की आँधी के सिवा और क्या कहेंगे!

दोषी कौन है? व्यक्ति या व्यवस्था, यह तय कर पाना थोड़ा कठिन है; क्योंकि कोई व्यक्ति जन्म से ऐसा नहीं होता, जैसा वह अब हो गया है। रही बात व्यवस्था की, वह हम सबके द्वारा ही बनाई हुई है। जब इसे हम सबने बनाया है, तो इसके बिगड़ेपन के अथवा सुधरेपन का दायित्व तो हमारा ही हुआ।

अवांछनीयताएँ जब वांछित लगने लगें, दुष्कृत जब सुकृत के रूप में सम्मानित होने लगे, पाप जब पुण्य का दमन कर अपनी शेखी बघारे— तब यही समझा जाना चाहिए कि आसुरी अँधियारे की अंधेरगर्दी प्रबल हो उठी है। ऐसे में जब सभी नियम निरुपाय होने लगें, तब महाकाल का कालदंड ही सबको नियंत्रित करने में सक्षम होता है। प्रकाश का प्रवर्तन ही मार्ग होता है। नियति के नियम ही नियमन करते हैं। प्रकृति ही परिवर्तन लाती है। अगले दिनों यही होने जा रहा है। समय ही सुधार का संवर्द्धन करेगा। वही यह सीख देगा कि धन का उपयोग प्रदर्शन नहीं है। जीवन में सुविधा नहीं, आवश्यकता का महत्त्व है। बड़ा वह है, बड़प्पन

उसका है—जो आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति में संतोष और सुख अनुभव करे।

सावधान! युग बदल रहा है। युग-परिवर्तन का यह सच सबसे पहले प्रशासन सुनेगा। प्रशासनिक अधिकारी व कर्मचारी इसे सुनेंगे भी और समझेंगे भी। उन्हें भली प्रकार यह अनुभव होगा कि प्रशासन जन-जीवन की सेवा, सुरक्षा व सुविधा के लिए है; न कि स्वयं अपने व अपनों के लिए। प्रशासन में जहाँ, जितना जन-जीवन सेवा-सुरक्षा व सुविधा प्राप्त करेगा; वहाँ उसको उतनी ही बड़ाई व सम्मान मिलेगा। अपना कर्त्तव्यपालन करने वाले पुरस्कृत होंगे, जबकि कर्त्तव्य की अवहेलना करने वालों को तिरस्कार ही मिलेगा। वर्तमान के अनुभव भविष्य में न रह पाएँगे। युग बदलेगा तो भविष्य भी बदलेगा। नए युग के नवीन समय में सुधरना या सिधारना—इन दो में से किसी-न-किसी को चुनना पड़ेगा। समय का बदलाव सभी को यह समझदारी सीखने-सिखाने के लिए विवश करेगा।

सम्मान बचाना है, तो समझदारी अपनानी पड़ेगी। अन्यथा अपमान व अवमानना तो है ही। परिस्थितियाँ परिवर्तन के लिए विवश व बेबस करेंगी। इस अनचाहे परिवर्तन को ही मनचाहा मानना पड़ेगा। बदलाव की बयार ऐसी बहेगी कि सभी उसकी लपेट-चपेट व झपेट में आते चले जाएँगे। प्रशासन भी इसी से परिवर्तित होगा। तब यह परिवर्तित प्रशासन स्वयं ही प्रकाशित प्रशासन का रूप लेगा।

प्रशासन की संरचना व स्वरूप, इसमें काम करने वाले अधिकारी-कर्मचारी इस परिवर्तन को, इसके सुयोग व संयोग को अपना सौभाग्य मानेंगे। सुविधा शुल्क देने वाले और पाने वाले अपनी सुविधाएँ न बढ़ा सकेंगे। उन्हें यह भली प्रकार अनुभव हो जाएगा कि यह सुविधा शुल्क उनके लिए सुविधा न होकर असुविधा है। इसे पाने और पालने की ख्वाहिश और कोशिश महाविषधर सर्प को पालने और पाने जैसा है, जिसका सामीप्य व सान्निध्य कभी भी जीवन को संकट व विपत्ति में डाल सकता है।

प्रकाशित प्रशासन में समझदारी तीनों की बढ़ेगी। जनप्रतिनिधि, जनता के द्वारा अस्वीकार करने के भय से सही राह चुनेंगे। प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी अपने दायित्व की पूर्ति अपमान के भय व सम्मान की चाहत में करेंगे। नागरिक यह समझ जाएँगे कि नागरिक सुविधाओं के लिए उन्हें नागरिक दायित्वों की पूर्ति करना अनिवार्य है। प्रारंभ में इससे सभी को भले थोड़ी अटपटाहट व छटपटाहट हो, पर धीरे-धीरे दृष्टि व दृष्टिकोण परिवर्तन से यह संयोग सभी को सौभाग्य लगने लगेगा; क्योंकि उनको यह सच पता चल जाएगा कि मानव जीवन की महिमा-मर्यादा, गर्व और गरिमा इसी में निहित हैं। प्रकाशित प्रशासन के इस सत्य से जीवन-व्यवस्था बदलेगी। इसके प्रभाव, उद्योग व व्यापार के बदलते स्वरूप में भी दिखाई पड़ने लगेंगे। ❑

युग बदलेगा तो भविष्य भी बदलेगा। नए युग के नवीन समय में सुधरना या सिधारना—इन दो में से किसी-न-किसी को चुनना पड़ेगा। समय का बदलाव सभी को यह समझदारी सीखने-सिखाने के लिए विवश करेगा। सम्मान बचाना है, तो समझदारी अपनानी पड़ेगी। अन्यथा अपमान व अवमानना तो है ही। परिस्थितियाँ परिवर्तन के लिए विवश व बेबस करेंगी। इस अनचाहे परिवर्तन को ही मनचाहा मानना पड़ेगा। बदलाव की बयार ऐसी बहेगी कि सभी उसकी लपेट-चपेट व झपेट में आते चले जाएँगे।

प्रखर प्रज्ञा–सजल श्रद्धा

हमारी इष्टसत्ता ऋषियुग्म पूज्य गुरुदेव और माताजी की दिव्य चेतना का स्वरूप प्रखर प्रज्ञा और सजल श्रद्धा में विद्यमान है। युगतीर्थ शांतिकुंज के हृदयस्थल में विराजमान यह स्थान आज विश्व के करोड़ों गायत्रीसाधकों, श्रद्धालुओं, तीर्थयात्रियों के लिए श्रद्धा और आस्था का केंद्र है। समाधि स्थल के नाम से प्रसिद्ध यह दिव्यस्थल हमारी गुरुसत्ता के स्वरूप का प्रतीक और पर्याय है। हम सभी की शक्ति, सामर्थ्य, ऊर्जा, संकल्प और सृजनशीलता के स्रोत यहीं से प्रवाहशील होते हैं।

शताब्दी वर्ष की इस पुण्यवेला में हमें जिस संकल्प के साथ आगे बढ़ना है, ध्यान रहे उसकी डोर यहीं बँधी है, और हमारी सफलता का सारा सरंजाम भी यहीं से उपलब्ध होना है। मिशन की नई पीढ़ी कहीं इतना ही समझकर न रह जाए कि जैसे अन्य महापुरुषों, देवमानवों के महाप्रयाण स्थल-समाधि स्थल होते हैं, इसी परंपरा में हमारी गुरुसत्ता का भी यह समाधि स्थान है और इससे ज्यादा कुछ खास नहीं तो यह केवल आंशिक सत्य होगा।

नई पीढ़ी में इतनी समझ मात्र से बात नहीं बनने वाली। यह केवल आंशिक सच्चाई ही होगी। पूरी सच्चाई तो यह है कि दुनिया के किसी भी अन्य समाधिस्थलों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती और न यह उस परंपरा में आता है। वास्तविकता में समाधिस्थल प्रखर प्रज्ञा और सजल श्रद्धा युगतीर्थ शांतिकुंज के केंद्र में स्थित साधनापूरित दिव्य आध्यात्मिक तीर्थ हैं।

हमारी गुरुसत्ता ने अपने जीवनकाल में ही महाप्रयाण से दशक वर्ष पूर्व ही इस स्थान को चिह्नित कर सिद्धतीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। युगतीर्थ की चेतना का नेतृत्व करने वाली युगशक्ति को प्रतीक रूप सजल श्रद्धा और प्रखर प्रज्ञा नाम देकर दो छतरियाँ स्थापित करवा दी थीं। यह तो लोकश्रद्धा की दृष्टि से उनका एक लीला चरित्र मात्र है कि उनके पंचभौतिक शरीरों का उसी प्रांगण में अग्नि समर्पण किया जाना और उस स्थान पर समाधि चबूतरा बनाना। सच्चाई में तो अपने स्वरूप एवं शक्ति को उन्होंने वहाँ पहले ही प्रतिष्ठित कर दिया था।

जो परिजन उनके लीला सहचर रहे हैं और मिशन में गहराई से जुड़े हैं, वे इस स्थान की इस अलौकिक महत्ता से भली भाँति परिचित हैं। पूज्य गुरुदेव और माताजी की जीवन तपश्चर्या का सुफल इस समाधिस्थल पर सँजोया हुआ है। जो भी उनके साथी-सहभागी रहे हैं—उन सबके लिए समान रूप से यह सुफल, आशीर्वाद रूप में प्रवाहित होता है। इष्टसत्ता ने अपनी साधना से जिस गायत्री तत्त्व की सिद्धि की, उसकी शक्ति को विश्वमानवता के कल्याण हेतु प्रस्फुटित करने का स्रोत स्थान इसी समाधिस्थल को निर्धारित किया।

पूज्य गुरुसत्ता ने प्रखर प्रज्ञा और सजल श्रद्धा के प्रतीक रूप इस ज्ञानधारा-युग चेतना के केंद्र स्थान को युगतीर्थ का नाभिस्थल बनाकर आध्यात्मिक ऊर्जा से ओत-प्रोत कर दिया। ऋषि विश्वामित्र की भाँति तप करके अपनी सिद्धि को युग भागीरथी बनकर ज्ञान गंगोत्तरी को शांतिकुंज से प्रवाहित करने वाले युगऋषि हमारे पूज्यवर ने इस गंगोत्तरी की दो शाश्वत धाराओं

के रूप में प्रखर प्रज्ञा और सजल श्रद्धा की स्थापना की है।

मानव मात्र के उत्थान और कल्याण की अखंड ऊर्जा और अनंत शक्ति के स्रोत यहाँ सदैव उपस्थित हैं। वह समय दूर नहीं, जब समूचा विश्व समुदाय इसी दिव्य स्थान की छत्रछाया में अपने उत्कर्ष और विश्रांति को प्राप्त करने को खड़ा दिखाई देगा। लौकिक दृष्टि से देवात्मा हिमालय की सुरम्य दिव्य घाटियों से घिरा सप्तसरोवर तीर्थ हरिद्वार का पावन क्षेत्र और गुरुसत्ता की तपशक्ति के केंद्र शांतिकुंज की गोद में यह समाधिस्थल मौजूद है।

पूज्य गुरुदेव ने इसे ठीक उस स्थान पर प्रतिष्ठित किया है, जिसके नीचे से पतितपावनी माँ गंगा की भगीरथ धारा अहर्निश प्रवाहित हो रही है। उसी के ऊपर स्थित है यह ज्ञानगंगोत्तरी का आध्यात्मिक तीर्थ, जिसे देश-दुनिया के परिजन पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी के समाधि स्थान के रूप में जानते हैं। गायत्रीसाधकों के लिए प्रखर प्रज्ञा के रूप में पूज्य गुरुदेव और सजल श्रद्धा के रूप में वंदनीया माताजी का प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त करने की अनुभूति कराने वाला यह पूज्य स्थान है।

नई पीढ़ी व दुनिया के लिए यह संकेत-सूत्र मात्र है कि जिस प्रकार नदी, पोखर, तालाब, स्नानघर में पहुँचकर इस स्थूल काया को स्नान कराया जाता है, जिससे हम स्वच्छता, जीवंतता, उत्साह-स्फूर्ति आदि को प्राप्त कर पुनः तरोताजा हो उठते हैं, उसी प्रकार गुरुसत्ता के इस समाधि स्थल पर प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा के समक्ष पहुँचने पर आंतरिक चेतना के परिष्कार, ऊर्जावान, संकल्पवान, पवित्र और प्रखर बनने की अनुभूति लेकर ही लौटते हैं।

यह स्थान इस युग में एक सिद्ध आध्यात्मिक सरोवर की भाँति है। यहाँ अंतश्चेतना को स्नान कराने से ठीक उसी प्रकार जैसे, स्नान कर लौटने पर शरीर एक नया जीवन प्राप्त करता है और ऊर्जावान हो जाने का एहसास कराता है, ऐसे ही समाधिस्थल से लौटने पर हमारी जीवन चेतना भी सर्वथा नए स्वरूप की अनुभूति लेकर लौटती है।

शक्ति-सामर्थ्य, प्राण-ऊर्जा, उत्साहरूपी आशीर्वाद की पुलकन पूरे अस्तित्व में सुख-शांति-आनंद को अभिव्यक्त करती हुई परम सौभाग्य का प्रत्यक्ष अनुभव कराती है। गायत्री परिवार के विश्वव्यापी संगठन के हमारे प्रत्येक परिजन अपने निजी अथवा लोकसेवी जीवन में संघर्षों-चुनौतियों में स्वयं को उलझते, टूटते, बिखरते, फँसते, असहाय पाते हैं—तब सीधे यहीं आकर अपनी कथा-व्यथा-वेदना को प्रकट करते हैं और अपने इष्ट भगवान से अंतर्संवाद कर सार्थक समाधान लेकर ही लौटते हैं।

गूँगे के गुड़ की भाँति हरेक परिजन के जीवन से जुड़ी यह अनुभूत सच्चाई है। कोई भी, कभी खाली, निराश नहीं लौटता और न कभी लौटेगा। यहाँ आध्यात्मिक ऊर्जा का, गुरुसत्ता की शक्ति का अथाह समुद्र लहराता है। इस स्थान की चारों ओर की दिव्यता में जप, ध्यान, मौन, प्रार्थना, अभ्यर्थना करते हजारों साधक-जनसामान्य वर्षपर्यंत दिखाई देते हैं, परंतु यहाँ के आध्यात्मिक वैभव को शब्दों की सीमा में रख पाना असंभव है। सिर्फ इतना ही कि इस युग की मानवता का युगतीर्थ यही एक अद्वितीय आध्यात्मिक स्थान है।

हमारे आत्मसिद्ध साधकों और शांतिकुंज के अंतर्वासी परिजनों को इस मर्म का पूर्णतया बोध है कि युगतीर्थ शांतिकुंज में स्थापित अखंड दीप में साक्षात् हमारे ऋषियुग्म गुरुदेव-माताजी की कारण सत्ता विद्यमान है। उनका आध्यात्मिक अस्तित्व आद्यशक्ति के चरणों में अपनी अनंत सामर्थ्य, शक्ति

और विभूतियों से विभूषित हो धराधाम को धन्य करने के लिए अहर्निश दीपज्योति के रूप में देदीप्यमान है।

साथ ही यह भी अनुभूत है कि ऋषियुग्म की सूक्ष्मसत्ता, उन्हीं की शक्ति के स्वरूप को धारण कर समाधिस्थल पर प्रखर प्रज्ञा और सजल श्रद्धा के रूप में प्रतिष्ठित है। हमारे ऋषियुग्म के अस्तित्व की सत्ता अद्वैत रूप में एक अखंड दीप ज्योति बनकर प्रज्वलित है और उनका स्वरूप समाधि स्थल पर युगतीर्थ की चेतना का आध्यात्मिक सरोवर बनकर प्रतिष्ठित है। हम-आप भी उन्हीं युगऋषि की अस्तित्व चेतना का लौकिक कलेवर बनकर दृश्य जगत् में दिखाई पड़ने वाले इस विराट देव परिवार के रूप में विस्तृत हैं।

तीनों स्तर पर सर्वत्र उन्हीं की सत्ता, स्वरूप और चेतना का विस्तार है। हमें अपने इस जन्मशताब्दी वर्ष के साधना-संकल्प उत्सव की सार्थकता और सफलता के लिए जिस शक्ति-सामर्थ्य व आत्मबल की आवश्यकता होगी, वह समाधिस्थल पर प्रतिष्ठित शक्तिपुंज से सहज ही प्राप्त हो उठेगी, बस, आवश्यकता होगी अपने इष्ट-आराध्य के इस आध्यात्मिक स्वरूप को आत्मसात् कर लेने की। ❑

महान दार्शनिक सुकरात से एक व्यक्ति ने पूछा—''इस संसार में आपका सबसे करीबी मित्र कौन है ?'' सुकरात ने जवाब दिया—''मेरा मन।'' उसने फिर पूछा—''आपका शत्रु कौन है ?'' सुकरात बोले—''वह भी मेरा मन ही है।'' उसे ये जवाब समझ नहीं आए, इसलिए उसने सुकरात से इस बात को समझाने हेतु निवेदन किया।

सुकरात बोले—''मेरा मन इसलिए मेरा मित्र है; क्योंकि यह मुझे सच्चे मित्र की तरह सही मार्ग पर ले जाता है और वही मेरा दुश्मन भी है; क्योंकि वही मुझे गलत रास्ते पर भी ले जाता है। मन में ही तो सारा खेल चलता रहता है।''

फिर उस व्यक्ति ने पूछा—''लेकिन जब शत्रु और मित्र, दोनों हमारे साथ ही हों तो फिर हमारे ऊपर किसका अधिक असर होगा ?'' सुकरात यह सवाल सुनकर मुस्कराते हुए बोले—''यही हमारी चुनौती है। यह हमें तय करना होगा कि हम मन के किस रूप को स्वयं पर हावी होने देंगे। हमने यदि बुरे रूप को हावी होने दिया तो यह शत्रुवत् व्यवहार करता हुआ हमें पतन की ओर ले जाएगा और यदि सकारात्मक बातों पर ध्यान दिया तो वह हमें मित्र की भाँति उपलब्धियों की ओर ले जाएगा।'' अब वह व्यक्ति संतुष्ट होकर चला गया।

सच्चा पुण्य कमाएँ

नदियों के अविरल प्रवाह सम, आगे बढ़ते जाएँ,
परहित को ही धर्म मानकर, सच्चा पुण्य कमाएँ।

वृक्ष रूप को प्राप्त बीज, पहले अपने को खोता है,
यही वृक्ष फिर जन-जन को, अवलंबन अपना देता है,
बीजों जैसा त्याग भाव हम, जीवन में अपनाएँ,
परहित को ही धर्म मानकर, सच्चा पुण्य कमाएँ।

प्रकृति ब्रह्म का कण-कण भी तो, परहित हित ही करता है,
उनके ऐसे योगदान से, सबका भाग्य सँवरता है,
पर हितार्थ जीवन जीकर हम, इसका मूल्य चुकाएँ,
परहित को ही धर्म मानकर, सच्चा पुण्य कमाएँ।

हर अवयव जब निज शरीर का, त्याग भाव अपनाता है,
उसके बदले में ही तो वह, निज का पोषण पाता है,
सबका हित ही अपना हित हो, ऐसी सोच बनाएँ,
परहित को ही धर्म मानकर, सच्चा पुण्य कमाएँ।

जीते जो परमार्थपरायण, अमर वही हो जाते हैं,
मानव के तन में वे ही जन, सहज देव बन जाते हैं,
इस सद्गुण के पोषण को हम, जीवन लक्ष्य बनाएँ,
परहित को ही धर्म मानकर, सच्चा पुण्य कमाएँ।

—श्यामलाल शर्मा

युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड-10
गायत्री-साधना का गुह्य विवेचन

ऋषिगणों ने गायत्री महामंत्र को एक महान आध्यात्मिक शक्ति माना है। इस महामंत्र के उच्चारण मात्र से अनेकानेक प्रसुप्त शक्तियाँ मानवीय देह में जाग्रत हो जाती हैं। इसके लिए हम जानें—

- गायत्री का मंत्रार्थ ।
- विभिन्न महापुरुषों के गायत्री-भाष्य ।
- धर्म का स्वरूप ।आत्मज्ञान और जीवन सदुपदेश ।
- गायत्री के चौदह रत्न ।
- गायत्री की चौबीस शिक्षाएँ ।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 09 / 2025
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

परमवंदनीया माताजी
जन्मशताब्दी
एवम्
अखण्ड दीप शताब्दी वर्ष के प्रयाज क्रम में
पिपलिया बुज़ुर्ग, महेश्वर, खरगोन (मध्य प्रदेश) में
5100 तरुपुत्र रोपण महायज्ञ
उत्साहपूर्वक संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा- 281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org